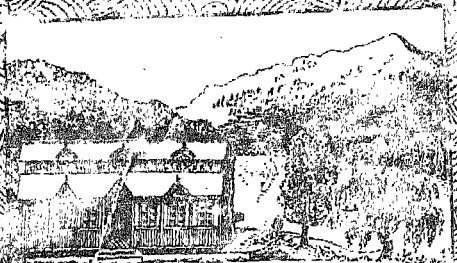

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल

Class No. 891.5 P
Book No. R 2121
Reg. No. 2221

उसका प्यार

(आठ पश्चिमी कहानियों का संग्रह)

अनुवादक

रामकृष्ण शुक्ल

प्रकाशक

राजस्थान-पुस्तक-मन्दिर,

त्रिपोलिया बाजार, जयपुर।

प्रथम बार १००० | १९३७ | मूल्य ...

Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal.
दुर्गासाह म्युनिसिपल लाइब्रेरी
नैनीताल
Class No. (क्रमांक) 891.38
Book No. (पुस्तक) R 21 U
Received On. Sept 1957

ALLAHABAD:
Printed by Krishna Ram Mehta, at the Leader Press.

2221

पूर्वनिवेदन

इस संग्रह में आठ विदेशी कहानियाँ हैं, जिनमें दो टालस्टाय के रूपक हैं। इनमें से अधिक अब से चौदह-पन्द्रह वर्ष पहले किए गए अनुवाद हैं और एक-दो बाद के। हमारे प्रिय मित्र बाबू द्वारकादास अग्रवाल ने इन्हें प्रकाशित करने की इच्छा की। फलतः ये पाठकों के सामने हैं।

अनुवाद ठीक-ठीक हुआ है या नहीं, सो तो हम कह नहीं सकते। हम स्वयं ही सन्दिहान हो सकते हैं। परन्तु मूल कहानियाँ पाश्चात्य देशों के सर्वमान्य कलाकारों की उत्तम कृतियाँ हैं—कोई किसी दृष्टि से, कोई किसी दृष्टि से। टालस्टाय के एक रूपक में और ऑस्कर वॉइल्ड की कहानी में शायद एकाध पाठक अप्राकृतिक तत्व की कुछ छाया ढूंढकर शिकायत कर बैठें। उनके मनस्तोष के लिए यदि हम यहाँ इन दोनों रचनाओं की आलोचना करने बैठ जाएँ तो भी वे शायद नाराज़ ही होंगे। अतः हम यहाँ इतना ही समाधान दे सकते हैं कि हमारे ऊपर इन कहानियों का अच्छा ही प्रभाव पड़ा था और इनमें भी हमें कहानी के मनोरंजन और उद्देश्य की यथेष्ट सम्पत्ति दिखाई दी थी। तभी तो उनका अनुवाद किया था। अब यदि पाठक हमारे मन को असंस्कृत कहना चाहें तो कह सकते हैं।

वैसे तो सभी कहानियाँ ऐसी हैं जो मनोरंजक हैं, भावुकतापूर्ण हैं, नैतिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाली हैं। हिन्दी पाठकों के लिए ये अजनबी-सी भी न होंगी, जिस दोष से पाश्चात्य कहानियों के अनुवाद प्रायः मुक्त नहीं रह पाते। इसलिए, कि इस संग्रह में नवजीवन को छोड़कर और किसी कहानी का वातावरण ऐसा नहीं है जो एकदेशीयता लिए हो। और, 'नवजीवन' तथा 'सब की जड़' को छोड़कर किसी में विदेशी नाम भी नहीं है इनमें दो कहानियाँ 'तितली' और 'उसका प्यार' विदेशी आधार पर स्वतंत्र ढंग से लिखी हुई हैं।

हम तो यही समझते हैं कि अनुवादन-कार्य के अतिरिक्त इन कहानियों में सब कुछ अच्छा ही अच्छा है। बस, अनुवादन-कार्य ही बुरा है।

—अनुवादक।

कहानियों की तालिका

विषय			पृष्ठ
१—जलपरी	...	...	१
२—शर्त	...	...	३५
३—उसका प्यार	...	...	५३
४—नवजीवन	...	...	९३
५—तितली	...	...	१२३
६—सब की जड़	...	...	१३३
७—प्रथम सुराकार	...	...	१६१
८—ताराशिशु	...	...	१९७

उसका प्यार

जलपरी

चिरकाल हुआ, प्रभास तीर्थ के समीप, समुद्र के बिलकुल तट पर ही एक वृद्ध मनुष्य रहता था। वह समुद्र की लहरों के साथ बह कर आए हुए शैवाल-समूह को बटोर कर खाद के लिए बेच देता था। उसी से उसकी जीविका चलती थी। यहाँ की चट्टानें विशाल तथा सुन्दर हैं और समुद्र का जल एक तरफ़ बड़े वेग से आकर इनसे टकराता है। दूर तक उस प्रदेश में इससे अच्छे चट्टानों के दृश्य शायद बहुत ही कम हैं। यहाँ की चट्टानें लगभग बिलकुल सीधी और उत्तुंग हैं। जहाँ-तहाँ ऊपर से नीचे, रेत में, पहुंचने के लिए बहुत ही कम मार्ग हैं और वहाँ जीवन का संशय बना ही रहता है। समुद्र और चट्टानों के बीच में रेतीला स्थान इतना तंग था कि लहर आने पर वहाँ खड़े होने की भी जगह नहीं रहती थी।

इसी तट पर वृद्ध मैलाकी की झोपड़ी थी। मैलाकी ने अपनी यह झोपड़ी निरी बालू पर नहीं बनाई थी। चट्टान में ऊपर से नीचे तक एक बहुत बड़ी दरार थी जिससे उतरने के लिए एक टूटा-फूटा मार्ग बन गया था। यह दरार नीचे की तरफ़ इतनी थोड़ी थी कि चट्टान की नींव पर मैलाकी ने अपने रहने का स्थान बना लिया था और यहीं वह वर्षों से रहता चला आता था। लोग कहते हैं कि अपने व्यवसाय के प्रारंभिक दिनों में वह शैवाल

इकट्ठा कर-कर के ऊपर बेचने ले जाया करता था। परंतु कुछ समय बाद उसे एक गधा मिल गया था जिसे उसने चट्टान पर चढ़ने-उतरने का अभ्यास करा दिया था। वह अब इसी पर अपना घास का गट्ठर रखकर ले जाता था। गधे के रहने के लिए अपनी झोपड़ी के पास ही उसने एक छप्पर भी डाल दिया था।

जैसे-जैसे समय बीता, वृद्ध मैलाकी को गधे के अतिरिक्त ईश्वर की दया से एक दूसरा सहायक भी मिल गया। यदि यह सहायता उसे न मिलती तो शीघ्र ही अपनी कुटी और स्वतन्त्रता को छोड़ कर उसे भीख मांगनी पड़ती, क्योंकि गठिया और वृद्धावस्था के कारण वह बड़ा निर्बल हो गया था।

जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं उस समय मैलाकी बारह महीने से पहाड़ी के ऊपर नहीं चढ़ा था। पिछले कुछ महीनों से उसने अपने व्यवसाय को बढ़ाने की भी कोई चेष्टा नहीं की थी। इस बीच में उसका एक-मात्र काम रुपया संभाल लेना तथा कभी-कभी गधे के लिए चारे का एकाध गट्ठर खोल कर डाल देना ही था। व्यवसाय का मुख्य काम तो उसकी पोती कौला ही करती थी। यह अब सर्वथा बालिका न थी, प्रत्युत नवयौवन के बल से वह नवयुवती हो गई थी।

इसको समुद्रतट के आस-पास के सब किसान तथा तीर्थ के सभी छोटे-मोटे व्यवसायी तक जानते थे। उसकी आकृति से सादगी टपकती थी तथा वह बिलकुल इहलोक की नहीं मालूम होती थी। उसका काला चमकीला केशपाश, जिसमें कभी कंघी का

स्पर्श तक न हुआ था, विपर्यस्त दशा में बिखरा रहता था। उसका क़द नाटा, हाथ छोटे और आँखें काली थीं। लोग कहते थे कि यह कौला बड़ी बलिष्ठ है। आस-पास के सभी बालक इस बात की साक्षी देते थे कि रात-दिन काम करते रहने पर भी वह थकावट का नाम नहीं जानती। परन्तु उसकी आयु के सम्बन्ध बड़ा मत-भेद था। कुछ लोग यदि उसे दस वर्ष की बतलाते तो पास ही उसे पचीस वर्ष की बतलानेवाले भी मौजूद थे। परन्तु पाठक समझ लें कि इस समय उसकी बीसवीं वर्षगाँठ बीत चुकी थी। बुड्ढे लोग उसकी इस बात की प्रशंसा करते थे कि अपने पितामह के साथ उसका व्यवहार बहुत अच्छा है। वे कहते थे कि कौला अपने लिए तो कुछ नहीं ख़रीदती; हाँ, अपने दादा के लिए थोड़ी-सी ताड़ी और तम्बाकू अवश्य ले जाती है।

कौला का एक भी मित्र नहीं था। अपने समवयस्कों में भी उसकी बहुत कम जान-पहचान थी। लोगों का कहना था कि वह देखने में भयावनी और स्वभाव में बुरी है, वह किसी से ढंग के साथ नहीं बोलती और पूरी चंडी है, आदि। नवयुवक उसकी कोई चिन्ता नहीं करते थे। उसके पहनने के वस्त्र सदा एक-से रहते थे। पूनम के दिन भी उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता था। उसके पैर प्रायः नंगे रहते थे। उसने कभी भी स्त्री-सुलभ मद के मोहक जाल का प्रयोग नहीं किया था।

जिस प्रकार उसके वेष में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता था उसी प्रकार और बातों में भी वह सदैव एक सी रहती थी। साथ

ही वृद्ध मैलाकी को भी कभी किसी ने किसी मन्दिर में जाते नहीं देखा था।

परन्तु पिछले दो वर्षों से कौला तीर्थ के एक वृद्ध व्यास से उपदेश ग्रहण करने लगी थी और पर्व के दिन प्रायः देवालयों के दर्शन को भी जाती थी। पर इन अवसरों पर वह अपने वस्त्र नहीं बदलती थी। अपने सपरिश्रम और संशययुक्त कार्य के लिए उसने एक गाढ़े की चादर और एक गाढ़े की धोती को ही उपयुक्त वस्त्र समझ रक्खा था। इन्हीं को पहने हुए वह देवालय में भी जाकर भीतर की ओर द्वार से लगी हुई शिला पर बैठ जाती थी। जब व्यासजी ने उससे देवालय में आने को कहा तो उसने उत्तर दिया कि मेरे पास वहाँ आने को कपड़े नहीं हैं। इस पर पुजारी ने उसे समझा दिया कि वह वस्त्रों का कोई विचार किए बिना ही देवालय में आ सकती है। पुजारी की इस बात पर विश्वास करके वह देव-मन्दिर में भी जाने लगी थी।

इससे उसने अपने प्रशंसनीय साहस का परिचय दिया। उसके स्वभाव में कुछ हठ भी मिला हुआ था। लोग कहते थे कि मैलाकी के पास धन है और यदि कौला चाहती तो महिलोचित रेशमी साड़ी पहन सकती थी। पंडित रामानन्द व्यास ने जब वृद्ध मनुष्य के पास जा कर इस विषय पर बात छेड़ी तो वह इतना क्रुद्ध हुआ कि उनको चुप हो जाना पड़ा और कौला पहले की ही भांति प्रतिदिन के से कपड़े पहने हुए मन्दिर में पहुँच कर शिला पर जा बैठती।

[२]

कौला के अविश्रांत परिश्रम के विषय में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता था, क्योंकि जितना शैवाल अपने गधे की सहायता से वह इकट्ठा कर लेती थी मैलाकी ने उसका आधा भी किसी रोज़ अपने जीवन-भर में जमा नहीं कर पाया था। परन्तु आजकल घास का भाव भी मंदा हो रहा था। कौला और गधा, दोनों, अनवरत परिश्रम करते थे, और शैवाल के ढेर इतनी शीघ्रता से जमा हो जाते थे कि उसके छोटे-छोटे हाथ और जरा से शरीर को देखनेवालों को आश्चर्य होता था। लोग उससे पूछते—"क्या तुम्हें रात में कोई परी या भूत या राक्षस सहायता देने आता है?" पर वह उनको ऐसा कड़ा उत्तर देती कि जिससे उसके विषय में नाना प्रकार की बातें सुनने में आती थीं।

कभी किसी ने उसे अपने काम की शिकायत करते नहीं सुना था। परन्तु अब वह अपने पड़ोसियों के व्यवहार की भी बड़ी शिकायत करने लगी थी। पहले वह रामानन्द व्यास के पास गई और जब उनसे यथेच्छ सहायता न मिली तो वह वहाँ के किसी वकील के पास जाकर अपना दुःख रोने लगी। परन्तु दुर्भाग्य से वह भी व्यासजी से अच्छा सहायक न निकला। जिस स्थान से वह शैवाल बटोरा करती थी वह एक गुफ़ा थी जिसे लोग मैलाकी की गुफ़ा कहा करते थे। समुद्रतट पर पहुँचने

का एक-मात्र वही मार्ग था जो ऊपर से मैलाकी की झोपड़ी तक आता था। पानी के ज्वार के समय इस गुफा की चौड़ाई लगभग दो सौ गज़ होती थी और इसके दोनों तरफ चट्टानें इस प्रकार खड़ी थीं कि उत्तर और दक्षिण से भी मैलाकी का स्थान पूर्णतया सुरक्षित रहता था। शैवाल बटोरने के लिए यह बड़ा उपयुक्त स्थान था।

समुद्र की प्रत्येक लहर बहुत-सा शैवाल ला कर गुफा में डाल जाती थी। हरिपद और विष्णुपद की हवा के समय तो वहाँ उसकी कमी कभी रहती ही नहीं थी। जिस समय समुद्र के शान्त होने के कारण मीलों तक और कहीं उसका पता भी नहीं होता था तब भी वहाँ लम्बे कोमल शैवाल के ढेर-के-ढेर इकट्ठे किए जा सकते थे। वेगशाली लहरों में से शैवाल का खींच निकालना बड़ा सापद और कठिन काम था। अब अन्य लोग भी उसकी गुफा में घुस आने लगे और उसके देखते-ही-देखते उसकी—उसके दादा—की सम्पत्ति उठा कर ले जाने लगे। यह देख कर कौला का हृदय विदीर्ण हो जाता था। इसी दुःख के कारण उसको वहाँ के वकील के पास जाना पड़ा था। परन्तु दुष्ट वकील ने उससे रुपया तो ले लिया परन्तु काम उसका कुछ भी न किया। बेचारी का हृदय खंख-खंड हो गया।

उसकी यह एक धारणा थी कि ऊपर से गुफा को जो रास्ता आता था वह उन्हीं दोनों, दादा-पोती, की सम्पत्ति था। जब लोग उसे बहकाते कि वह गुफा तथा उस गुफा में आने-वाला समुद्रजल

उसके दादा के स्वाधीन अधिकार में नहीं थे तो वह मान जाती। परन्तु गुफ़ा के मार्ग को कौन कह सकता है? किसने उसे इस रूप में तैयार किया है? क्या उसने कष्ट, थकावट और परिश्रम सह कर अपने छोटे-छोटे से हाथों से पत्थर का एक-एक टुकड़ा लगा कर उसे इसलिए ठीक नहीं किया था उससे उसके दादा का गधा वहाँ पैर टिका सके? क्या उसने मिट्टी का एक-एक ढेला लगा कर चट्टान की सतह को इकसार नहीं किया था जिससे उसके गधे को विषम मार्ग पर चलने में कठिनाई न हो? अब, जब उसने देखा कि बड़े-बड़े किसानों के लड़के भी अपने-अपने गधे लेकर वहीं आते हैं—और इनमें एक युवक भी अपना टट्टू लेकर आता है—तो वह समस्त मनुष्य-जाति की निन्दा कर उठी और क़सम खाकर बोली कि वकील मूर्ख है।

उन लोगों के ले जाने के बाद भी कौला के लिए काफ़ी शैवाल बच रहता था। परन्तु उसको यह बात समझाने के सब प्रयत्न निष्फल थे। क्या तमाम शैवाल पर, या कम-से-कम पूरे रास्ते पर, उसका और उसके दादा का पूर्ण अधिकार नहीं था? क्या इस प्रकार के हस्तक्षेप से उसके व्यापार को व्याघात नहीं पहुँचता है? जब गेंदासिंह का लड़का अपने छोटे टट्टू-सहित मार्ग में रहता है तब क्या उसे अपने लदे हुए गधे को बीच में से ही नहीं उतारना पड़ता? गेंदासिंह ने यह भी इच्छा प्रकट की थी कि कौला उसके निर्धारित मूल्य पर अपना शैवाल उसके हाथ बेच दिया करे। परन्तु कौला ने इसे स्वीकार नहीं किया और गेंदासिंह

ने इस प्रकार उसे हानि पहुँचाने के लिए अपना टट्टू भेजना आरम्भ कर दिया।

इस पर आँखों से चिंगारियाँ छोड़ती हुई कौला बूढ़े बाबा से बोली, "अब-के आवे तो मैं उसके गधे की टाँग ही तोड़ दूंगी।"

[३]

गेंदासिंह का मकान प्रभास के समीप पहाड़ी से कोई एक मील की दूरी पर था। समुद्र का शैवाल ही यहाँ ऐसी वस्तु था जिसे वह खाद के लिए सुगमता से पा सकता था। अतएव उसके लिए यह बड़ी कठिन बात थी कि कौला के हठ के कारण वह शैवाल लेना छोड़ दे। कौला ने गेंदा के लड़के से कहा, "और भी तो कितनी ही खोहें हैं।" लड़के ने उत्तर दिया, "परन्तु कौला, न तो और कोई इतनी समीप ही है और न कहीं इतना शैवाल ही बह कर आता है।"

गेंदा के लड़के ने उसे समझा दिया, "जो शैवाल समीप और अधिक पास होगा उसे मैं नहीं छूऊँगा। मैं तुमसे बड़ा हूँ और बलिष्ठ भी हूँ, अतएव मैं उन चट्टानों से शैवाल ले लिया करूँगा जहाँ तुम जा भी नहीं सकोगी।"

घृणा-भरे नेत्रों से देखती हुई कौला ने फिर भी टट्टू को लंगड़ा कर देने की धमकी दी और कहा, "मैं भी वहाँ से शैवाल ला सकती हूँ जहाँ जाने का तुम्हारा साहस भी न हो सके।"

इस क्रोध पर गेंदा का लड़का कुन्दन हँसा। उसने उसके विप-

र्यस्त केशों पर ताना मारा और कहा, "तुम तो निरी जलपरी-जैसी हो।"

"जलपरी-जैसी! हाँ, हाँ! मैं तुझे भी जलपरी बना दूंगी। मैं यदि पुरुष होती तो कभी एक गरीब लड़की और अपाहिज बुड्ढे के यहाँ डाका मारने न जाती। कुन्दन, तू मनुष्य नहीं है—तू आधा भी मनुष्य नहीं है।"

परन्तु उसके कहने से क्या होता था। कुन्दन एक बड़ा सुन्दर पुरुष था। उसके हाथ-पैर सुडौल थे तथा बाल सुनहरे घुंघरवाले, और नेत्र चमकीले थे। उसका बाप तो एक साधारण किसान था, परन्तु अड़ोस-पड़ोस की नवयुवती कन्याओं में कुन्दन का विशेष आदर था। हर-एक उसको चाहती थी। यदि नहीं चाहती थी तो केवल कौला। वह तो उसे ज़हर समझती थी।

जब कुन्दन से लोगों ने पूछा, "तुम इतने भले होकर एक ग़रीब लड़की और बुड्ढे आदमी को क्यों सताते हो?" तो उसने उत्तर दिया, "असल बात ही इसका न्याय कर देगी। मेरी समझ में तो यह ठीक नहीं है कि जिसे ईश्वर ने सब की सम्पत्ति बनाया है उस पर कोई एक मनुष्य ही अपना अधिकार जमा ले। मैं कौला को कोई हानि तो पहुँचाऊँगा नहीं, और मैंने उससे यह कह भी दिया है। परन्तु वह तो निरी मक्कार लोमड़ी है—और उसे इस बात की शिक्षा तो देनी ही पड़ेगी कि वह ज़रा ज़ुबान संभाल कर बोला करे। यदि एक बार वह मुझसे सभ्यता से बोले

तो मैं अपने पिता से कह कर बुड्ढे आदमी को उसके रास्ते के लिए कुछ महसूल तो दिलवा ही दिया करूँ।"

इसका कौला ने उत्तर दिया, "मैं अच्छी तरह बोलूँगी!—उससे! कभी नहीं। जब तक मेरे मुँह में जीभ है तक तक तो यह होने से रहा। और मुझे यह भी भय है कि पुजारी ने भी उसे समझाने की जगह उसकी पीठ ही और ठोक दी होगी।"

परन्तु दादा ने पोती को टट्टू को लंगड़ा कर देने के लिए उत्साहित नहीं किया। उसने कहा, "टट्टू की टाँग तोड़ देना साधारण बात नहीं है। इससे, मैं समझता हूँ, तुझे जेल में जाना पड़ेगा जिससे हम दोनों को परेशानी होगी। हाँ, टट्टू के मार्ग में हम जितनी बाधाएँ हो सकें उतनी डाल सकते हैं। हमारा गधा तो सीखा हुआ है, उसके काम में इससे कोई रुकावट नहीं पैदा होगी।"

अगली बार ऐसा ही हुआ। जब कुन्दन मैलाकी की झोपड़ी के समीप पहुँचा तो उसने मार्ग बिगड़ा हुआ पाया। परन्तु किसी न किसी प्रकार वह उतर गया। बेचारी कौला ने देखा कि जिन पत्थरों को उसने बाधा उत्पन्न करने के लिए बड़े परिश्रम से मार्ग में डाल पाया था वे सब एक तरफ को लुढ़का दिए गए हैं। बेचारी ने समझा, "मुझे हानि पहुँचाने के लिए यह पूर्णतया कटिबद्ध है।" मारे क्रोध के वह पागल-सी हो गई।

मैलाकी अपनी झोपड़ी के द्वार पर बैठा था। आगन्तुक को देख कर बोला, "कुन्दन, तुम तो एक भले लड़के हो।"

कुन्दन ने उत्तर दिया, "जो मुझे हानि नहीं पहुँचाता उसका मैं भी कुछ नहीं बिगाड़ता।—क्यों मैलाकी, समुद्र तो सब के ही लिए है न?"

कौला ने कहा, "और आसमान भी तो सब के ही लिए है? पर मैं तो तुम्हारे कुठलों पर उसे देखने के लिए चढ़ने नहीं जाती। तुम में तनिक भी इन्साफ़ या ग़ैरत नहीं है जो तुम एक बुड्ढे आदमी को तंग करने के लिए आ पहुँचते हो।" इस समय वह एक आँकड़ा लिए हुए चट्टानों के बीच में खड़ी थी और उससे समुद्र की लहरों में से शैवाल खींच रही थी।

"मैं न तो तुम्हें दिक करना चाहता हूँ और न इन्हें। थोड़ी देर मुझे यहाँ रहने दिया करो तो हम अब भी मित्र हो सकते हैं।"

कौला उत्तेजित होकर बोली, "मित्र! कौन तुम-जैसों को मित्र बनाएगा! तुम्हें इन पत्थरों को यहाँ से हटाने की क्या पड़ी थी? पत्थर तो दादा के हैं न।" इन शब्दों के साथ ही क्रोध के आवेश में वह ऐसी हो गई मानो उसके ऊपर झपटी पड़ती थी।

वृद्ध ने कहा, "रहने दो कौला, रहने दो। उसे अपना दंड खुद मिल जाएगा। किसी-न-किसी दिन जब किनारे पर ज़ोर की हवा चलती होगी, वह अपने आप डूब कर मर जाएगा।"

कौला ने कहा, "डूब भी जाय वह। जब वह उस सामने-वाले गड्ढे में गिर जाएगा और लहर आती होगी तो मैं उसे बचाने के लिए अपनी उँगली भी न हिलाऊँगी।"

2221

"नहीं, कौलारानी। तुम मुझे कृपा करके उस लम्बे शैवाल की तरह अपने आँकड़े से निकाल लेना।" कुन्दन ने चिढ़ाने के लिए कहा।

कुन्दन की बात सुन कर उसने घृणा से मुँह फेर लिया और वह अपनी झोपड़ी में चली गई। यह उसका अपना काम करने का समय था। कौला की इसमें भी बड़ी हानि होती थी कि लहरों में से शैवाल को निकालते समय कुन्दन उसके ढंग को ग़ौर से देखता था।

[४]

वैशाख का महीना था और तीसरे पहर के लगभग चार बज चुके थे। सुबह से दोपहर तक पश्चिम दिशा से बड़े ज़ोर की हवा चली थी और बीच-बीच में पानी के झल्ले भी पड़ जाते थे। गुफ़ा में दिन भर सामुद्रिक पक्षियों का आना-जाना लगा रहा था। इन लक्षणों से कौला को विश्वास था कि आनेवाली लहरें चट्टान को शैवाल से बिलकुल ढक देंगी।

ज़रा देर में लहरें अद्भुत वेग के साथ उन छोटी-छोटी चट्टानों की तरफ़ बढ़ने लगीं। यही समय था जब कि शैवाल संग्रह किया जा सकता था, क्योंकि सात बजे अंधेरा हो जाएगा, नौ बजे बाढ़ ज़ोर की होगी और दिन निकलने से पहले लहरें फिर शैवाल को समुद्र में बहा ले जाएंगी। कौला इस बात को खूब अच्छी तरह समझती थी और कुछ-कुछ कुन्दन भी समझ गया था।

हाथ में आँकड़ा लिए हुए कौला नंगे पैर आई। उसने कुन्दन के टट्टू को चुपचाप रेत में खड़ा हुआ देखा और उसकी प्रबल इच्छा हुई कि इस पर आक्रमण करूँ। कुन्दन भी इस समय त्रिशूल की तरह का एक सामान्य आँकड़ा लिए हुए एक बड़ी चट्टान के नीचे खड़ा-खड़ा लहरों को देख रहा था। उसने कह रक्खा था कि मैं उसी जगह से घास बटोरूँगा जहाँ से कौला नहीं ले सकती, और अब वह देख रहा था कि पहले कौनसा स्थान उपयुक्त होगा।

मैलाकी ने देखा कि कौला टट्टू को मारने के लिए बढ़ी। वृद्ध को पशु से भी उतनी ही घृणा थी जितनी कि उसके स्वामी से, परन्तु उसने चिल्ला कर कहा, "रहने दो कौला, उससे मत बोलो।"

वायु के साथ आई हुई अपने दादा की आवाज़ सुन कर कौला रुक गई और अपने काम में लगी। गुफ़ा से नीचे की तरफ़ को जाकर चट्टानों में शीघ्रता से झपटती हुई उसने देखा कि कुन्दन अब भी अपने स्थान पर खड़ा है। सामने ही घूमती हुई समुद्र की श्वेत लहरें बड़े वेग से उठ-उठ कर टूट रही थीं और वायु चट्टानों की कन्दराओं तथा सन्धिस्थलों में विषण्ण रूप से घुरघुरा रही थी।

बीच-बीच में प्रायः मेह की बौछारें हो जाती थीं। आकाश, यथेष्ट प्रकाश होने पर भी, बादलों के कारण अंधकार से घिरा था। जो लोग समुद्रतट की शोभा पर मुग्ध हैं कदाचित ही उन्हें और

कभी इससे अधिक सुहावना दृश्य देखने को मिला होगा। भिन्न-भिन्न वर्णों के संयोग से उत्पन्न हुई उस समय की शोभा उपमातीत थी। वितत समुद्र की नीलिमा, टकराती हुई लहरों की धवलता, उड़ती हुई बालुका के आपीत रंग तथा चट्टानों की यत्रतत्रस्थ पिंगल और अरुण रेखाओं से दृश्य पर एक विचित्र सौन्दर्य-श्री बरस रही थी।

परन्तु न तो कौला को और न कुन्दन को ही इन बातों का ध्यान था। सच तो यह है कि वे इस समय अपने व्यवसाय की भी चिन्ता नहीं कर रहे थे। कुन्दन सोच रहा था कि किस प्रकार मैं उन स्थानों से अपना काम बनाऊँ जहाँ कौला नहीं पहुँच सकती और कौला सोच रही थी कि जहाँ-कहीं कुन्दन जाएगा मैं वहाँ उससे आगे जाऊँगी।

बहुत सी बातों में कौला कुन्दन की अपेक्षा लाभ में थी। वह वहाँ के प्रत्येक टीले से परिचित थी और जानती थी कि कहाँ खड़ा होने का निरापद स्थान है और कहाँ नहीं। इसके अतिरिक्त उसमें फुर्ती भी, अभ्यास के कारण, अधिक हो गई थी। कुन्दन भी उसकी भांति बलिष्ठ और फुर्तीला था परन्तु वह लहरों के मध्य में उसकी तरह एक पत्थर से दूसरे पत्थर पर नहीं कूद सकता था। और न अभी वह इस योग्य ही था कि जल के वेग से सहायता ले सके। लहरें तो कौला की मित्र थीं, वह उनसे मनमाना काम निकाल सकती थी। वह उनके वेग को पहचान लेती और इस बात का अनुमान कर लेती थी कि कहाँ जाकर वह कम होगा।

कौला अपनी गुफा के समीप के गढ़ों में काम करते समय बड़ी दक्ष और निडर रहती थी। जैसे ही उसने कुन्दन को एक चट्टान से दूसरी चट्टान पर जाते देखा, उसे यह समझ कर बड़ी प्रसन्नता हुई कि वह बहक रहा है। गुफा में आने-वाली हवा के झोंके के कारण शैवाल उत्तर-वाले पुश्ते तक नहीं पहुँचेगा, और उसी जगह एक गहरा गड्ढा भी था।

अब वह अपने काम में लगी। वह अपने आँकड़े से समुद्र के विपर्यस्त शैवाल को रेत के दूर के सिरे पर रखती जाती थी जिससे आक्रामक तरङ्ग उस पर अपना पुनरधिकार न कर लें।

उधर कुन्दन भी उत्तर-वाले पुश्ते पर शैवाल के ढेर लगा रहा था। संचय बढ़ता जा रहा था और कुन्दन को विश्वास था कि वह, टट्टू से कितना ही काम लेने पर भी, सब शैवाल उस रोज़ नहीं ले जा सकेगा। परन्तु तो भी उसका ढेर कौला के ढेर से बड़ा न था। कौला का आँकड़ा उसके आँकड़े से अच्छा था और उसकी दक्षता उसके बल के अधिक उपयोगी थी। जब कभी उसका कोई प्रयत्न निष्फल होता तो वह उसे अपनी स्वाभाविक हँसी द्वारा चिढ़ाती और चिल्ला कर कहती, "तुम तो आधे भी मनुष्य नहीं हो।" पहले तो वह हँसी में टालता रहा, परन्तु जब वह बार-बार अपनी सफलता पर गर्व करने और उसकी विफलता पर ताना मारने लगी तो उसने नाराज़ होकर उत्तर देना बन्द कर दिया। उसे अपने ऊपर भी सामने आई हुई इतनी सम्पत्ति को खो देने का विचार कर बड़ा क्रोध हुआ।

अशान्त समुद्र लम्बे-लम्बे शैवाल से भरा हुआ था, परन्तु ढेर-के-ढेर कुन्दन के सामने से बहे चले जाते थे। कभी-कभी तो वह उसके ऊपर से होकर भी निकल जाते थे। कौला के विचित्र कटाक्षों की आवाज़ उसके कानों में पड़ती थी। अंधेरा होता जाता था, लहरें बढ़ती हुई जोर से आ-आ कर टकराती थीं और हवा के झोंके जल्दी-जल्दी अधिकाधिक वेग से आ रहे थे। परन्तु कुन्दन का काम बन्द न था। जब तक कौला करेगी तब तक, उसके चले जाने के भी थोड़ी देर बाद तक, वह वहाँ रहेगा। क्या वह एक लड़की से मात खा जाएगा ?

बड़ा गड्ढा पानी से भर गया था और पानी मानो इस समय उबल रहा था। उसके भीतर शैवाल के ढेर-के-ढेर इधर-उधर नाच रहे थे, जिनके आकार और स्थूलता को देख कर कोई भी मनुष्य डूब जाने की आशंका त्याग कर उनके ऊपर लेटने की इच्छा कर सकता था।

कौला भली प्रकार जानती थी कि इस उबलते हुए प्रचण्ड वेगयुक्त गड्ढे में से कोई चीज़ निकाल लेना कितना कठिन था। गड्ढा चट्टानों के भीतर था और उसका समुद्र की तरफ़ का सिरा ऊंचा, ढालू और फिसलहा था। उतार के समय भी उसमें अथाह पानी रहता था। कौला गुफ़ा के दर्शकों से कहा करती थी कि इसमें डाली हुई मछली समुद्र में कोसों दूर निकल जाती है। उसने गड्ढे का नाम राक्षसी गुफ़ा रख छोड़ा था और वह उसमें से शैवाल निकालने का कभी भी प्रयत्न नहीं करती थी।

परन्तु कुन्दन इस बात को नहीं जानता था। जब उसने गड्ढे के उस अविश्वास्य फिसलहे सिरे पर अपना पैर जमाने की चेष्टा की तो कौला देखती रही। वहाँ स्थिर होकर कुन्दन ने थोड़ा-सा शैवाल खींचा। किस प्रकार वह यह काम कर सकता था कौला की समझ में न आया। परन्तु वह थोड़ी देर तक देखती रही और तब उसने उसे फिसलते देखा। कुन्दन फिसला और संभल गया। फिर फिसला और फिर संभल गया।

कौला चिल्ला कर बोली, "कुन्दन मूर्ख, यदि तुम एक बार भी उसमें गिर गए तो फिर कभी भी न निकल सकोगे।"

कौन कह सकता है कि कौला ने यह बात उसे डराने के लिए कही या उसका हृदय ही पसीजा और उसने कुन्दन की भयानक आपत्ति का अनुभव किया। वह स्वयं भी इसको नहीं समझ सकती थी। कुन्दन से उसे बड़ी घृणा थी परन्तु, साथ ही, अपनी आँखों के सामने ही उसे डूबते हुए देखने की इच्छा भी शायद वह नहीं कर कर सकती थी।

कुन्दन ने क्रोध से उत्तर दिया, "तुम अपना काम देखो। मेरी कोई चिन्ता न करो।"

"चिन्ता! कौन चिन्ता करता है तुम्हारी?" और यह कह कर कौला अपना काम करने लगी।

परन्तु जैसे ही वह अपना लम्बा आँकड़ा लेकर चट्टानों पर उतरी उसने सहसा 'छप्' का सा शब्द सुना। घूमते ही उसे दिखाई दिया कि लड़का गड्ढे की भँवरों और तरंगों में उलट-पुलट

हो रहा है। समुद्र का वेग इतना बढ़ गया था कि लहरें बड़े जोर से उसके ऊपर तक आ कर, एक प्रपात का-सा शब्द करती हुई चट्टानों से उतर कर समुद्र में जा-मिलती थीं और फिर जब बाढ़ का पानी निकल जाता था तो गढ़े की सतह क्षण भर के लिए किंचित् शान्त हो जाती थी। परन्तु तो भी बुद्बुदों का उठना और जल का उबलना बन्द न होता था, मानो गड्ढे के नीचे आग दहक रही हो। परन्तु यह अपेक्षाकृत शान्ति केवल क्षण भर के लिए ही होती थी, क्योंकि जैसे ही पहली लहर के फेन बन्द होते दूसरी फिर तुरन्त ही चट्टानों से आकर टक्कर मारती और उसके कुपित गर्जन से दिशाएँ गूँज जातीं।

क्षण भर में कौला गड्ढे के पास पहुँच गई। लहर के शान्त होने पर कुन्दन का शरीर उसकी ही तरफ़ बह आया। कौला ने देखा कि कुन्दन का सिर तथा मुख खून से रंगा हुआ है। वह जीवित था या मृत, कौला नहीं समझ सकी। उसने केवल उसके खून तथा सुनहरी बालों को ही देख पाया। इसके बाद कुन्दन का शरीर समुद्र में लौटते हुए पानी के वेग से दूसरी तरफ़ बह गया, परन्तु इस बार अतिरिक्त जल इतना अधिक नहीं था कि वह गड्ढे से बाहर बह जाता।

अगले ही क्षण कौला ने अपने आँकड़े से काम लिया। उसे कुन्दन के कपड़े में अड़का कर खींचा और तुरन्त ही नीचे की तरफ़ झुककर, अपने आँकड़े के लम्बे मुड़े हुए बेंटे का सहारा ले

उसने उसे अपने दाहिने हाथ से पकड़ने का प्रयत्न किया। पर वह उसे पकड़ न सकी, वह केवल छू सकी।

सामने से गर्जती हुई दूसरी भयंकर लहर आई और उसके ऊपर होकर वेग से चली गई। जब पानी उतर गया तथा उसका ज़ोर और तुमुल बन्द हो गया तो उसने देखा कि कुन्दन का शरीर आँकड़े का सहारा छोड़ कर फिसलहे सिरे पर आधा जल में तथा आधा बाहर लम्बा-लम्बा पड़ा हुआ है। तदनन्तर उसकी दृष्टि कुन्दन के चेहरे पर गई। कुन्दन की आँखें खुली हुई थीं और वह बेचारा अपने हाथों से 'छप्-छप्' करता हुआ निकलने का प्रयत्न कर रहा था।

कौला ने व्यग्रता से कहा, "आँकड़े को पकड़ लो कुन्दन, आँकड़े को पकड़ लो।" इसके साथ ही उसने अपने हाथों से उसके कुर्ते को दृढ़ता-पूर्वक पकड़ लिया।

कुन्दन ने कौला का आँकड़ा पकड़ने का प्रयत्न किया। इतनेमें अगली लहर आई और टकरा कर लौट गई। अब भी वह गड्ढे के शिलाफलक पर ही पड़ा था। परन्तु अगले क्षण ही कौला गड्ढे से एक-दो गज़ ऊपर की तरफ़ बैठी हुई थी और कुन्दन का रक्त-स्रावी सिर उसकी गोद में रक्खा हुआ था।

अब कौला क्या करे? स्वयं तो वह उसे उठा कर ले नहीं जा सकती थी और पन्द्रह ही मिनट में समुद्र की लहर वहाँ तक भी आ पहुँचेगी। कुन्दन बिलकुल बेहोश और पीला हो गया था, उसके ज़ख़्म से ख़ूब ख़ून बह रहा था। कौला ने अत्यन्त कोम-

लता के साथ अपने हाथ से उसके मुँह पर से बालों को हटाया। साँस देखने के लिए धीरे-से उसके मुँह के ऊपर झुकी। कौला ने उसे ग़ौर से देखा। उसे मालूम हुआ कि कुन्दन सुन्दर है।

[५]

कुन्दन की प्राणरक्षा के लिए इस समय कौला अपना क्या नहीं दे डालती? अब उसके लिए कोई भी वस्तु इतनी बहुमूल्य नहीं थी जितना कि कुन्दन का जीवन। परन्तु वह करे तो क्या करे? वह सोचने लगी, "दादा यदि चट्टानों पर चढ़ भी सकें, तो बड़ी कठिनाई से यहाँ तक आ सकेंगे। तब क्या इसे घसीट कर कुछ दूर ऊपर ले चलूँ, जिससे पानी की लहरें पास तक न आ सकें।"

यही निश्चय कर कौला कुन्दन को उठा कर लाने लगी। उसको अपनी ताक़त पर आश्चर्य हुआ। परन्तु, वास्तव में इस समय उसमें बहुत अधिक बल आ गया था। धीरे-धीरे बड़ी कोमलता के साथ ही, चट्टानों पर स्वयं इस प्रकार गिरती-पड़ती जिससे कुन्दन को चोट न लगे वह उसे रेत के सिरे पर ऐसी जगह ले आई जहाँ अगले दो घंटे तक जल के पहुँचने की कोई आशंका नहीं थी।

यहाँ उसका दादा खड़ा था। वह दरवाज़े से देख रहा था। कौला ने कहा, "कुन्दन सामनेवाले गड्ढे में गिर कर चट्टानों से टकरा गया था। देखो इसके सिर में कितनी चोट आई है।"

मैलाकी ने उसके शरीर को देख कर कहा, "कौला, मैं तो समझता हूँ यह मर गया है।"

"नहीं दादा, अभी यह मरा नहीं है। लेकिन शायद यह मर रहा है। मैं शीघ्र खेत की ओर जाती हूँ।"

"इसके सिर की तरफ़ देखो, कौला। वे लोग कहेंगे कि तुमने ही इसे मार डाला है।"

"कौन ऐसा कहेगा? क्या कोई इस तरह झूठ बोल सकता है? क्या मैंने ही इसे गड्ढे में से नहीं निकाला है?"

"इससे क्या? इसका बाप कहेगा कि तुमने ही इसे मारा है।"

कोई चाहे कुछ भी कहे, कौला को उस समय अपना कर्तव्य साफ़ दिखाई दे रहा था। उसने सोचा, "मुझे शीघ्र ही गेंदा के खेत में जाकर आवश्यक सहायता प्राप्त करनी चाहिए। यदि दुनिया ऐसी ही बुरी है जैसी कि दादा बतलाते हैं तो वह वास्तव में इतनी बुरी है कि मैं उसमें और अधिक नहीं रह सकती। जो कुछ भी हो, मुझे अब अपने कर्तव्य के बारे में कुछ भी सन्देह नहीं है।"

इस प्रकार विचार कर कौला जितना शीघ्र अपने नंगे पैरों से चट्टानों पर चढ़ सकती थी चढ़ी। ऊपर पहुँच कर उसने चारों तरफ़ देखा कि शायद कोई मनुष्य दिखाई दे, परन्तु कोई भी दृष्टिगोचर न हुआ। अतएव वह यथाशक्ति गेंदासिंह के मकान की तरफ़ दौड़ी। समीप पहुँच कर उसने कुन्दन की मा

को द्वार पर खड़ी देखा। उसने पुकारने का प्रयत्न किया परन्तु उसकी आवाज़ रुँध गई। अन्तः दौड़ कर जाकर उसने कुन्दन की मा का हाथ पकड़ लिया।

कौला ने अपना हाँफ़ना बन्द करने के लिए उसका हाथ अपने धड़कते हुए हृदय पर रख कर पूछा, "वह कहाँ हैं?"

गेंदा की माँ भी मैलाकी तथा कौला के विरुद्ध कलह में भाग लिया करती थी। प्रश्न सुन कर बोली, "किसे पूछती है? मुझे क्यों इस तरह आकर पकड़ रही है?"

"तो वह मर रहा है। बस बता दिया।"

"कौन मर रहा है? क्या मैलाकी? अगर उसकी हालत ख़राब है तो हम किसी आदमी को भेजे देते हैं।"

"अरे, दादा नहीं, कुन्दन। वह कहाँ है—वह—मालिक?"

यह सुनते ही कुन्दन की माँ निराश हो घबराहट से सहायता के लिए पुकारने लगी। सौभाग्य से गेंदासिंह उसी समय एक मनुष्य के सहित आ पहुँचा।

कौला ने व्यग्रता से कहा, "अजी, डाक्टर को नहीं बुलाते? डाक्टर को बुलाओ जल्दी से, डाक्टर को।"

घबराहट में उसे नहीं मालूम हुआ कि डाक्टर बुलाया गया या नहीं। कुछ ही मिनट बाद फिर, वह गेंदा, उसकी स्त्री तथा एक दूसरे आदमी को साथ लेकर खेतों में होती हुई गुफ़ा की तरफ़ बढ़ी।

चलते-चलते उसकी आवाज़ कुछ ठीक हो गई, क्योंकि गेंदा-

सिंह आदि उसकी बराबर तेज़ नहीं दौड़ सकते थे और उसे अच्छी तरह साँस लेने का अवकाश मिल जाता था। चलते-चलते ही उसने घटना का वृत्तान्त बतलाने का प्रयत्न किया, परन्तु उसने अपनी बात बहुत कम कही। माता उसके पीछे ही लगी हुई जा रही थी और सुनते-सुनते कह उठती थी, "मेरे लड़के को मार डाला, मेरे लड़के को खा लिया," इत्यादि। फिर वह उसके जीवित होने के सम्बन्ध में सैकड़ों विचित्र से प्रश्न करने लगी। परन्तु पिता बहुत कम बोलता था। वह मितवादी, गम्भीर, परिश्रमी तथा सच्चरित्र था; परन्तु क्रोध आने पर वह भी बड़ा कठोर हो जाता था।

जैसे-ही वे लोग गुफा के मार्ग पर पहुँचे, दूसरे मनुष्य ने गेंदा के कान में कुछ कहा। सुनकर गेंदा ने कौला को रोक कर कहा, "अगर उसकी मृत्यु तुम्हारे द्वारा हुई है तो उसके जीवन के मूल्य में तुम्हारा जीवन लिया जाएगा।"

यह सुनते ही माता चीख़ पड़ी, "मेरे लाल को मार डाला रे, हाय" बेचारी कौला तीनों व्यक्तियों के मुख को देखती हुई सोचने लगी कि दादा का कहना ही सच निकला क्या? उन लोगों को यही सन्देह था कि कौला ने ही कुन्दन की जान ली है, जिसकी रक्षा करने के लिए वास्तव में उसने अपने जीवन की भी बाज़ी लगा दी थी।

भयव्याकुल नेत्रों से उनकी तरफ़ देख कर वह फिर उनके आगे-आगे चली। ऐसे अभियोग का वह उत्तर भी क्या दे सकती

थी। यदि वे कहने लगते कि तूने ही उसे गड्ढे में धक्का देकर उसके सिर में आँकड़ा मार दिया तो बेचारी क्या कह कर इसे मिथ्या प्रमाणित कर सकती थी ?

गवाहों द्वारा प्रमाण देने के नियम को कौला नहीं जानती थी। वह अपने को बिलकुल उनके क़ाबू में समझने लगी। परन्तु ढालू मार्ग पर दौड़ते समय उसका हृदय आशापूर्ण भावों से भरा हुआ था। कुन्दन को बचाने के लिए उसने उतना ही प्रयत्न किया था जितना वह अपने किसी भाई के लिए करती। इस प्रयत्न में जहाँ-जहाँ उसके हाथ-पैरों में चोट लगी थी। वहाँ से अब भी खून बह रहा था। एक बार तो उसने यहाँ तक विचार कर लिया था कि मैं भी इसके साथ ही गड्ढे में मर जाऊँगी। वह सोचने लगी, "इतना सब होने पर भी कुन्दन को मार डालने का दोष ये लोग मेरे ही सिर मढ़ रहे हैं। सम्भव है वह जीवित हो, परन्तु बच कर भी वह क्या बता सकेगा ? परन्तु नहीं, एक बार उसके नेत्र खुले थे और उसने शायद मुझे देख भी लिया था।" कौला को अपने लिए कोई भय नहीं था क्योंकि उसका हृदय उच्च भावों से पूर्ण था। परन्तु साथ ही वह घृणा, क्रोध और अवहेलना से भी भरा हुआ था।

[६]

नीचे पहुँच कर अपने घर के पास खड़ी हो वह इन लोगों के आने की प्रतीक्षा करने लगी जिससे वे उससे पहले ही कुन्दन के

पास पहुँच जाए। उनके आने पर उसने कहा, "वह है कुन्दन, और दादा भी उसी के पास हैं। जाओ उसे देख लो।"

माता-पिता पत्थरों में ठोकरें खाते हुए पुत्र को देखने के लिए दौड़े गए परन्तु कौला जहाँ-की-तहाँ खड़ी रही।

कुन्दन जहाँ-का-तहाँ लेटा हुआ था। वृद्ध मैलाकी एक लकड़ी के सहारे बड़ी कठिनता से उसके पास खड़ा था।

गेंदा और कुन्दन की मा को देख कर उसने कहा, "कौला के जाने के बाद यह ज़रा भी नहीं हिला। मैंने इसके सिर के नीचे यह पुराना चिथड़ा लगा दिया था और ज़रा सी शराब भी देने की कोशिश की थी, पर इसने ली ही नहीं।"

पुत्र को देख कर पछाड़ खा कर माता चिल्ला पड़ी, "मेरा बेटा। मेरा लाल।" लड़के के पास झुकते हुए पिता ने कहा, "अरी, चुप जा। क्या इस तरह भिनभिनाने से उसे आराम हो जाएगा?"

तदनन्तर एक-दो मिनट तक उसके मुख को देख कर गेंदा कड़ी दृष्टि से मैलाकी के मुख को देखने लगा। वृद्ध मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ था कि किस प्रकार इस तीव्र जिज्ञासा का उत्तर दे। उसने कहा, "वह बच जाएगा। यह सब उसकी अपनी ही करतूत है।"

पिता ने पूछा, "उसके चोट किसने मारी है?"

"पानी के ज़ोर से गिर कर उसने ख़ुद ही चोट मार ली है। मैं सच कह रहा हूँ।"

"झूठा !" पिता ने बूढ़े की तरफ़ देख कर कहा।

माता भी चिल्लाने लगी, "इन लोगों ने ही उसे मार डाला है, इन्होंने ही उसकी जान ली है।"

गेंदा ने कहा, "चुप क्यों नहीं हो जाती है। इन्हें जान के बदले जान देनी पड़ेगी।"

कौला ने झोपड़ी के सिरे के सहारे खड़ी-खड़ी सब बातें सुनीं, परन्तु वह अपने स्थान से हिली नहीं। ये लोग जो चाहें सो कहें। वे इसे हत्या ही समझें। वे उसे और उसके दादा को जेलख़ाने तक पहुँचा दें और वहाँ से फिर शायद दोनों को वधस्थान को भी जाना पड़े, परन्तु इस सब से क्या ? क्या वे उसके भीतर के भावों को भी छीन सकेंगे ? उसने कुन्दन को बचाने में कोई बात रख नहीं छोड़ी थी और अन्ततः उसने उसे बचा लिया था।

कौला को अपनी उस दुर्भावना और धमकी की याद थी। वे वास्तव में बड़े बुरे शब्द थे। पर उसके बाद से ही उसने कुन्दन का जीवन बचाने के लिए अपने को संकट में नहीं डाल दिया था क्या ? उनके जी में जो आवे सो कहें।

इसके बाद पिता ने अपने पुत्र के सिर और कंधों को गोदी में उठा कर दूसरों से उसे मार्ग पर ले चलने के लिए सहायता माँगी। उन्होंने परस्पर मिल कर उसे बड़ी सावधानी से उठाया और वे उसे उस तरफ़ ले चले जिस तरफ़ कौला खड़ी थी। निश्चल भाव से वह उनके काम को देखती रही। वृद्ध मनुष्य भी अपनी लकड़ी के सहारे उनके पीछे-पीछे घिसटता हुआ आ रहा था।

जब वे लोग झोपड़ी के सिरे पर पहुँचे, कौला ने कुन्दन के मुख की ओर देखा—देखा कि वह बहुत ही पीला हो रहा है, रक्त का वहाँ चिन्ह भी नहीं मालूम होता। परन्तु उसका टेढ़ा-बेढ़ा जख्म साफ़ दिखाई दे रहा था और व्रण के चारों तरफ़ की त्वचा नीली पड़ गई थी। उसके ईषत् पिंगल केश अब भी उसी प्रकार पीछे को लटक रहे थे। आह! उसके नेत्रों को कुन्दन का वह व्रणयुक्त पीला मुख कितना सुन्दर मालूम हो रहा था। कौला ने अपना मुख फेर लिया। वह अपने स्थान से हिली नहीं और न वह कुछ बोली ही।

परन्तु जिस समय वे झोपड़ी से निकल गए, उसे एक शब्द सुनाई दिया जिससे उसका हृदय हिल उठा। अभी तक वह सहारे से खड़ी हुई थी; अब उसने अपना सिर, मानो सुनने के लिए, उठाया। इसके पश्चात् वह उनका अनुसरण करने के लिए चली। सचमुच वे लोग मार्ग की तलैठी में रुक गए थे और उन्होंने कुन्दन के शरीर को चट्टानों पर रख दिया था। कौला को फिर वही शब्द सुनाई दिया। उसे मालूम हुआ जैसे कोई एक दीर्घ—अति दीर्घ—उच्छ्वास छोड़ रहा है। अब उससे रुका न गया और वह किसी की परवाह न करके शीघ्र क्षत मनुष्य के शरीर के पास दौड़ गई।

"वह अभी भी जीवित है" उसने कहा,—"वहाँ सामने—वह मरा नहीं है।" जैसे ही उसने ये शब्द कहे, कुन्दन ने अपनी आँखें खोल दीं और वह किसी को अपने इधर-उधर ढूँढने लगा।

माता ने कहा, "मुँह से बोलो, कुन्दन बेटा। ज़रा बोलो तो।"

कुन्दन ने माता की तरफ़ मुँह फेरा। वह मुस्कराया और फिर उन्मत्त की भांति घूर कर देखने लगा।

पिता ने कहा, "अब कैसे ही बेटा?" पुत्र ने यह सुन कर पिता की ओर अपना मुँह फेरा। ऐसा करने में उसकी दृष्टि कौला पर जा पड़ी। वह बोल उठा, "कौला, कौला।"

उपस्थित जनों में अब यह साबित करने के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं थी कि कौला ने उसके साथ शत्रुता नहीं की है। और सच यह है कि कौला इसी को अपनी पूर्ण विजय समझती थी! इस शब्द ने उसका प्रमाण दे दिया और वह अपनी झोपड़ी को लौट गई।

कौला ने दादा से कहा, "कुन्दन मरा नहीं है, और मैं समझती हूँ अब वे लोग इस विषय में कुछ नहीं कहेंगे कि हमने उसे हानि पहुँचाई है।"

वृद्ध मैलाकी ने अपना सिर हिला दिया। उसे इस बात पर प्रसन्नता थी कि लड़का मर नहीं गया है। वह उसकी जान लेना नहीं चाहता था परन्तु वह यह अच्छी तरह समझ रहा था कि लोग क्या कहेंगे। मनुष्य जितना अधिक धनहीन होता है दुनिया उतना ही अधिक उसे कुचलने के लिए पैर बढ़ाती है। कौला उसे तसल्ली दे रही थी। उसे स्वयं भी अब तसल्ली हो गई थी।

कौला ने हाल जानने के लिए खेत पर जाना चाहा, परन्तु उसे साहस न होता था। जब ही उसने यह सोचा उसके धैर्य ने जवाब दे दिया। वह फिर अपना काम करने चली गई और शैवाल खींच-खींच कर पहली जगह रखने लगी। काम करते-करते उसने देखा कि कुन्दन का टट्टू अब भी अपने स्थान पर खड़ा है। वह गई और भीतर से थोड़ा सा चारा लाकर उसने जानवर के सामने डाल दिया।

[७]

गुफ़ा में अंधकार हो गया था पर वह अब भी घास निकाल ही रही थी। इतने में ही उसने एक मन्दज्योति लालटैन के प्रकाश को दरार से नीचे आते देखा। यह अपूर्व बात थी, क्योंकि मैलाकी की गुफ़ा में शायद ही कभी कोई लालटैन आती थी। धीरे-धीरे लालटैन आई और अन्धकार में पथ के सिरे पर कौला को एक मनुष्याकृति खड़ी हुई दिखाई दी। वह उसके पास गई और उसने देखा कि गेंदासिंह खड़े हैं।

गेंदा ने कहा, "कौन ? कौला ?"

"हाँ, कौला ही हूँ। अब कुन्दन की तबियत कैसी है ?"

"बस तुम सीधी उसके पास चली ही चलो। बिना तुम्हें देखे वह जरा भी नहीं सोएगा। कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है। बस, चली चलो।"

"जो मेरी ज़रूरत है तो चली चलूंगी।"

गेंदासिंह ने क्षणभर प्रतीक्षा की कि कौला तैयार हो आई। परन्तु कौला को किसी तैयारी की ज़रूरत नहीं थी। समुद्र से शैवाल निकालने के कारण वह खारे पानी से बिलकुल नहा रही थी और उसके छोटे-छोटे बाल उच्छृंखलता से सिर के इधर-उधर बिखरे हुए थे। परन्तु जिस दशा में भी वह थी वह तैयार थी।

उसने कहा, "दादा सोने चले गए हैं और यदि आपकी इच्छा हो तो अब मैं आपके साथ चल सकती हूँ।"

तदनन्तर गेंदा मुड़ कर उसके पीछे-पीछे चलने लगा। वह आश्चर्य कर रहा था कि सब स्त्रियों से भिन्न अपना जीवन कौला किस प्रकार व्यतीत करती है।

चट्टान की चोटी पर पहुँच कर गेंदा उसका हाथ पकड़ कर ले चलने लगा। कौला इसका अर्थ न समझी, परन्तु उसने उसके हाथ से अपना हाथ छुड़ाने का कोई प्रयत्न न किया। वह चट्टान से गिर जाने के विषय में कुछ कहता जा रहा था, पर उसकी आवाज़ इतनी धीमी और अस्फुट थी कि वह कुछ समझ न सकी। परन्तु वास्तव में गेंदा अब जानता था कि कौला ने ही उसके पुत्र की रक्षा की है और उसे दुःख था कि बालिका को धन्यवाद देने के स्थान में उसने उसे वेदना पहुँचाई। वह अब उसे अपने हृदय में स्थान दे रहा था, और अपने शब्दों के अभाव के कारण वह अपने स्नेह को इस मूक प्रकार से प्रकट कर रहा था। उसने उसका हाथ इस प्रकार पकड़ लिया जैसे कोई किसी छोटे बालक

का हाथ पकड़ लेता है—और कौला चुपचाप उसके साथ-साथ चली गई।

खेत के पास पहुँच कर क्षण भर रुक कर गेंदा ने कौला से कहा, "बेटी, तुम्हे देखे बग़ैर उसे धीरज न होगा। पर तू वहाँ बहुत देर मत ठहरना, क्योंकि डाक्टर ने बतलाया है कि वह बड़ा कमज़ोर हो गया है और उसे नींद आ जाना बड़ा ज़रूरी है।"

कौला ने केवल अपना सिर हिला दिया और तब दोनों मकान में प्रविष्ट हुए। इससे पहले कौला कभी उस मकान के भीतर न गई थी। वह विस्मित नेत्रों से पाकशाला के सामान को देखने लगी। उसके हृदय में अपने भावी अदृष्ट के सम्बन्ध में इस समय कोई विचार उत्पन्न हुआ या नहीं—यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु यहाँ एक क्षण न ठहर कर वह गेंदासिंह के साथ शयनागार में पहुँची। कुन्दन अपनी माता के पलंग पर लेटा था।

कुन्दन ने पूछा, "क्या कौला है?"

माता ने उत्तर दिया, "हां, कौला ही है। तुम उससे बातें करो।"

कुन्दन ने कहा, "कौला यह तुम्हारी कृपा का ही फल है कि मैं इस समय जीवित हूँ।"

पिता ने अपने नेत्रों को कौला पर से हटा कर कहा, "कौला के इस अहसान को मैं कभी नहीं भूल सकता—कभी नहीं भूल सकता।"

माता ने अपनी करधनी को मुंह पर रख कर कहा, "हमारे और कोई बेटा नहीं था।"

कुन्दन ने कहा, "कौला, अब तो तुम मुझे अपना मित्र बना सकोगी ?"

कौला चुप रही ! इतने मनुष्यों के सामने होने से तथा उनकी बातें सुनकर वह संकुचित और निर्वाक् रह गई। इसके साथ ही बड़े भारी पलंग, दर्पण तथा कक्ष की उन आश्चर्यकारी वस्तुओं को देख कर, जिनके विषय में उसने कभी सुना भी नहीं था, वह अपनी क्षुद्रता पर विचार करने लगी। परन्तु उसने धीरे-से कुन्दन के पास जाकर अपना हाथ उसके हाथ पर रख दिया।

कुन्दन ने फिर कहा, "मैं जाकर शैवाल निकाल दिया करूँगा परन्तु वह सब तुम्हारे ही लिए होगा।"

माता बोली, "नहीं, अब तुम उस विपज्जनक स्थान में कभी नहीं जाना। जो तुम हम से बिछुड़ जाते तो हम क्या करते ?"

गेंदा ने कहा, "अब कौला को जाने दो।" कुन्दन ने कौला के हाथ का चुम्बन किया और कौला उसकी इस क्रिया पर उसकी तरफ़ देखती हुई सोचने लगी कि कुन्दन में अलौकिक सुन्दरता है। वह बोला, "कौला, आशा है तुम कल भी आकर हम लोगों से मिलोगी।"

इसका कौला ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसकी मा के साथ-साथ कमरे से बाहर चल दी। रसोईघर में पहुँच कर माता ने चाय, गाढ़ा दूध, गरम रोटी इत्यादि खाद्य पदार्थ दिए। नहीं

कहा जा सकता कि कौला को खाने की उस रोज़ इतनी अधिक परवाह थी, परन्तु वह इतना अवश्य सोचने लगी थी कि गेंदासिंह के कुटुम्ब के लोग बड़े सज्जन हैं। गेंदा ने कहा था, "कौला के अहसान को कभी नहीं भूल सकता।" ये शब्द उसी क्षण से कौला के हृदय पर अंकित हो गए थे और रात-भर उसके कानों में मानो गूंजते रहे। अब उसे यह सोच कर कितनी प्रसन्नता हो रही थी कि कुन्दन उस गुफ़ा में आया था। उसके जीवन के बचने में अब कोई शङ्का नहीं थी, और चोट!...उस-जैसे हृष्ट, पुष्ट और साहसी युवक के लिए यह कौन सी बात थी।

जब कौला जाने लगी तो कुन्दन की मा ने कहा, "कुन्दन के पिता तुम्हें पहुँचा आवेंगे।" परन्तु कौला ने इस पर ध्यान न दिया। प्रकाश हो अथवा अन्धकार, गुफ़ा को जाने के लिए वह अपना मार्ग मालूम कर सकती थी।

उसे अकेले ही जाते देख कर कुन्दन की मा ने कहा, "कौला, तू मेरी बच्ची है। मैं सदा तुझे इसी प्रकार समझूंगी।"

कौला भी चलते-चलते सोचने लगी, "ऐं, कैसे मैं इनकी बच्ची हो सकती हूँ...कैसे?"

× × × ×

अधिक कहानी बढ़ाने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं समझ गए होंगे। समय बीतने पर वह बड़ा भवन तथा खेत वाले मकान की समस्त आश्चर्यजनक वस्तुएँ उसकी अपनी हो गईं। लोग कहा करते थे कि कुन्दन ने समुद्र की एक जलपरी से विवाह

कर लिया है। परन्तु जब कभी वह इस बात को सुन पाती तो वह उसे पसन्द करती या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। जब कभी कुन्दन ही उसे जलपरी कह देता तो वह उस पर नाराज़ होने लगती और अपने काले बालों को छितरा कर अपने खुले हाथ से उसे थप्पड़ मारने के लिए दौड़ती।

वृद्ध मैलाकी ने भी अपने जीवन के बचे-खुचे दिन गेंदासिंह की छत के नीचे ही काटे। गुफ़ा और सामुद्रिक शैवाल का अधिकार गेंदा के आधीन समझा जाने लगा। और, कभी किसी पड़ोसी ने अब तक उसके इस अधिकार पर कोई विवाद नहीं किया। ❀

❀ एण्टनी ट्रोलोप की एक कहानी का अनुवाद।

शनि

शरद ऋतु की एक अंधेरी रात थी। वृद्ध महाजन रईस अपने कमरे में इधर से उधर घूम रहा था और कुछ सोचता जाता था। उसे पन्द्रह वर्ष पहले की याद आ रही थी जब कि एक दिन उसने अपने मित्रों को प्रीति-भोज दिया था। भोज में अनेक चतुर और बुद्धिमान लोग सम्मिलित थे और आपस में अनेक प्रकार की मनोरंजन की बातें हुई थीं। बहुत-सी बातों के बीच में मृत्युदंड का भी विषय उठा। अधिकांश अतिथि लोग, जिनमें कितने ही सम्पादक, लेखक तथा भिन्न-भिन्न विषयों के विशेषज्ञ थे, मृत्युदंड के विपक्ष में रहे। उनकी समझ में मृत्युदंड एक पुराना और असमयानुकूल दंडविधान था—ईसाई शासन के अयोग्य और नीति तथा आचरण के एकदम विपरीत। अतिथियों में से कुछ का विचार था कि मृत्युदंड का सर्वत्र बहिष्कार करके उसके स्थान में आजीवन कारावास का विधान होना चाहिए।

गृहस्वामी ने कहा—"मैं आपसे बिलकुल सहमत नहीं हूँ। जहाँ तक मुझे याद है, मुझे कभी मृत्युदंड या कारावास नहीं हुआ। परन्तु ऐसे प्रसंगों में पूर्वानुमिति से यदि कुछ कहा जा सकता है तो मैं कहूँगा कि आजीवन कारावास की अपेक्षा मृत्युदंड कहीं अधिक हितगर्भ और नीति-सम्मत है। फाँसी पर लटकाने से मनुष्य तुरन्त मर जाता है, परन्तु जेल में डाल कर

आप उसकी धीरे-धीरे जान खींचते हैं। आप ही बतलाइए, कौन अधिक दयाशील है ? वह जो कुछ क्षण के भीतर ही आपके प्राण ले लेता है अथवा वह जो धीरे-धीरे वर्षों तक, उनको बराबर आपके भीतर से निकलता रहता है ?"

एक अतिथि बोला—"यह दोनों ही नीति-विरुद्ध हैं, क्योंकि दोनों का अभिप्राय एक ही है – मनुष्य का जीवन लेना। आपकी शासन-व्यवस्था ईश्वरीय तो है नहीं। फिर क्या अधिकार है आपको कि जिस वस्तु को आप लौटा नहीं सकते उसे केवल अपनी इच्छा के कारण दूसरे से जबरदस्ती छीने ?"

उपस्थित सज्जनों में एक महाशय वकील भी थे। इनकी आयु लगभग पच्चीस वर्ष की होगी। जब उनकी सम्मति पूछी गई तो उन्होंने कहा—मृत्युदंड और आजीवन कारावास, वास्तव में, दोनों एक से ही नीति-विरुद्ध हैं, परन्तु मुझे यदि दोनों में से किसी एक को पसन्द करना पड़े तो मैं कारावास को ही पसन्द करूँगा। किसी-न-किसी तरह जीते रहना न जीने से फिर भी अच्छा है।"

इसके पश्चात् एक अच्छा शास्त्रार्थ हो पड़ा। महाजन, जो उस समय अब से पन्द्रह वर्ष छोटा था, उत्तेजित और अधीर हो उठा। मेज़ के ऊपर अपना हाथ पटकते हुए उसने वकील की ओर घूम कर कहा—"बिलकुल झूठ बात है। मैं दो लाख की शर्त लगाने को तैयार हूँ। आजीवन ! आप एक ही कोठरी में बराबर पाँच साल भी बन्द नहीं रह सकते।"

अच्छा, यदि आप शर्त लगा रहे हैं तो मैं भी कहता हूँ, मैं पाँच साल नहीं, पन्द्रह साल तक रह सकता हूँ।"

"पन्द्रह! अच्छा तो फिर तय—" महाजन ने उत्तेजना के भाव से कहा—"मित्रों, मैं इन्हें दो लाख रुपया दूँगा।"

इस प्रकार एक साधारण मजाक से इस उन्मत्त और भयानक शर्त की परिणति हुई। स्वेच्छावृत्त और दुर्ललित महाजन के पास उस समय लाखों की कोई गिनती नहीं थी। वह अपने गौरव के आनन्द में आपे से बाहर था। भोजन के समय उसने हँसी के भाव से वकील से कहा—"मेरे मित्र, आप अभी नवयुवक हैं। अपनी उत्तेजना को संभालिए, जिससे बाद में पछतावा न हो। दो लाख मेरे समीप कुछ नहीं हैं। परंतु आप अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ भाग के तीन-चार वर्ष व्यर्थ में नष्ट करने का इरादा कर रहे हैं। मैं कहता हूँ, तीन-चार, क्योंकि मैं जानता हूँ कि इससे अधिक आप कदापि नहीं रह सकेंगे। साथ ही यह भी याद रखिए कि जबरदस्ती के कारावास की अपेक्षा अपनी इच्छा से स्वीकार किया हुआ कारावास कहीं अधिक कठिन और कष्टप्रद है। यह विचार ही कि आप इच्छा होने पर किसी समय भी अपने को मुक्त कर सकते हैं आपके बन्दी जीवन को सदा दुःख देता रहेगा। मुझे आप पर तरस आता है।"

इस समय वही महाजन अपने कमरे के एक कोने से दूसरे कोने में चक्कर लगा रहा था और चिन्ता कर रहा था।

[२]

वह सोचता था . . . .

"मैंने यह शर्त क्यों बदी। क्या लाभ हुआ? वकील के जीवन के पन्द्रह वर्ष नष्ट हुए और मैं दो लाख रुपये खो रहा हूँ। क्या इस सब से संसार को विश्वास हो जाएगा कि मृत्युदंड कारावास से अच्छा है या बुरा है? कैसा वाहियात और भद्दा मालूम होता है। रोटी लगकर मुटाए हुए आदमियों की सी मेरी बात थी। और वकील को केवल धनलोलुपता को। बस, इससे अधिक और कुछ नहीं।"

फिर भोज के बाद जो कुछ हुआ था उसकी महाजन को याद आई। यह निश्चत हुआ था कि महाजन के ही मकान में, बगीचे की तरफ़ की एक कोठरी में वकील अपनी कारावधि बिताए और उसके ऊपर कठोर निरीक्षण और पूरी चौकसी रक्खी जावे। यह तय हुआ था कि इस अवधि के भीतर उसे कोठरी से बाहर नहीं निकलने दिया जाएगा और वह किसी से मिल-जुल नहीं सकेगा—मनुष्य का शब्द भी नहीं सुन सकेगा। परन्तु उसे समाचार-पत्र और मित्रों के पत्र आदि मिल सकेंगे। वह गाने बजाने का सामान रख सकता था, पुस्तकें पढ़ सकता था, शराब और तम्बाकू पी सकता था। प्रतिज्ञा के अनुसार वह एक खिड़की के द्वारा, जो इसी अभिप्राय से बनाई गई थी, शेष सृष्टि के साथ संवाद कर सकता था, परन्तु ख़ामोशी के साथ—मूक और निश्चल

रूप में। प्रत्येक आवश्यक वस्तु, जैसे पुस्तकें, शराब, वाद्य-सामग्री आदि, उसको एक छोटा-सा पुर्जा लिख भेजने से मिल सकती थीं, जिसे उसको खिड़की से गिरा देना होता था। प्रतिज्ञा-पत्र में उस प्रत्येक छोटी और बड़ी बात का उल्लेख किया गया था जिससे वकील का जीवन अधिक से अधिक एकान्त और विविक्त हो सकता था, और इस प्रतिज्ञा-पत्र के अनुसार वकील बाध्य था कि वह पूरे पन्द्रह वर्ष—१४ नवम्बर सन् १८७० के बारह बजे से १४ नवम्बर सन् १८८५ के बारह बजे तक—कोठरी में बन्द रहे। कोठरी से निकल भागने की वकील की ज़रा सी भी कोशिश, चाहे वह नियत समय से दो ही मिनट पहले हो, महाजन को दो लाख रुपया देने की उसकी ज़िम्मेदारी से मुक्त करती थी।

कारावास के प्रथम वर्ष में वकील को, जहाँ तक उसके पुर्जों से पता चलता था, अपनी एकान्तता और जीवन की निर्विशेषता से बड़ा कष्ट पहुँचता था। रात और दिन उसके कमरे से पियानो की आवाज़ आती रहती थी। शराब और तम्बाकू से उसने किनारा कर लिया था। उसने लिखा था—शराब पीने से इच्छाएँ बढ़ती हैं और इच्छाएं एक क़ैदी की परम शत्रु हैं। इसके अतिरिक्त, और किसी बात से इतनी अधिक झुंझलाहट नहीं होती जितनी सदैव ही अच्छी शराब पीते रहने से।

बराबर तम्बाकू पीते रहने से उसकी कोठरी की वायु ख़राब होती थी। पहले वर्ष में वकील को हलकी और रोचक पुस्तकें

पढ़ने को भेजी गईं—पेचीदे और संकीर्ण प्रेमरस के उपन्यास, पाप और पाप के कुतूहल आदि की कहानियाँ, सुखान्त प्रहसन इत्यादि।

दूसरे वर्ष पियानो की ध्वनि बिलकुल नहीं सुनाई दी और वकील ने केवल श्रेष्ठ और प्राचीन साहित्य के ग्रन्थों के लिए ही इच्छा प्रकट की। पाँचवें वर्ष पुनः संगीत सुनाई दिया और बन्दी ने शराब माँगी। जो लोग उसके निरीक्षण के लिए नियुक्त थे उन्होंने बतलाया कि उस वर्ष भर उसने खाने-पीने, मदिरा-पान और चारपाई पर पड़े रहने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया। वह प्रायः जम्हाइयाँ लिया करता और क्रोध में अपने-आप ही कुछ बातें किया करता। पुस्तकें उसने बिलकुल नहीं पढ़ीं। कभी-कभी रात को वह दीपक के सामने लिखने बैठ जाता और घंटों लिखा करता, फिर दिन निकलने पर सब को फाड़ डालता। अनेक बार मालूम हुआ कि वह रोता भी था।

छठे वर्ष के पिछले भाग में बन्दी ने बड़े उत्साह के साथ दर्शन, इतिहास तथा भिन्न-भिन्न भाषाओं का अध्ययन करना आरम्भ किया। उसकी अध्ययन-क्षुधा इतनी अधिक बढ़ी कि महाजन को उसके लिए पुस्तकें प्राप्त करना कठिन हो गया। चार वर्ष के भीतर उसे, वकील की प्रार्थना पर, लगभग छै सौ ग्रन्थ मंगवाने पड़े। इसी उन्मत्त उत्साह के समय में एक बार महाजन को उसका एक छोटा सा पत्र मिला, जिसमें लिखा था—प्रिय काराध्यक्ष! मैं अपनी इन पंक्तियों को छै भिन्न-भिन्न भाषाओं में लिख कर भेजता

हूँ। कृपया इन्हें निपुण भाषाविज्ञों को दिखाना। वे इनको पढ़ें और यदि उन्हें इनमें कोई भी भूल या अशुद्धि न मालूम हो तो, मेरी तुम से प्रार्थना है कि बाग में एक बन्दूक छुड़वा देना। उसकी आवाज़ से मैं समझ जाऊँगा कि मेरी मेहनत बेकार नहीं गई। प्रत्येक देश और काल के प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न भाषाओं में बोलते और व्यवहार करते हैं, परन्तु उन सब के भीतर समरूप से एक ही धारा प्रवाहित होती रहती है। आह! यदि तुम मेरे उस अलौकिक आनन्द की कल्पना कर सकते जिसका मैं इस समय अनुभव कर रहा हूँ—अब, जब कि मैं उन सब को समझ कर हृदयंगम कर सकता हूँ।

बन्दी की इच्छा पूर्ण हुई। बग़ीचे में महाजन की आज्ञा से दो बार बन्दूक का शब्द सुनाई दिया।

इसके बाद दसवाँ वर्ष बीतने पर वकील चुपचाप निश्चल भाव से अपनी मेज़ के सामने बैठा रहता और केवल इंजील पढ़ा करता। महाजन को इस बात पर प्रायः आश्चर्य होता कि जिस मनुष्य ने चार वर्ष के भीतर छै सौ भारी-भारी तथा कठिन और गम्भीर विषयों के ग्रन्थ छान डाले, उसे इस समय केवल एक अति सरल और पतली-सी पुस्तिका के पढ़ने में एक वर्ष के लगभग लग जाए। तत्पश्चात्, इंजील का अध्ययन समाप्त होने पर, धर्मग्रन्थों तथा भिन्न-भिन्न धर्मों के इतिहास का अध्ययन आरम्भ हुआ।

कारागार-जीवन के अन्तिम दो वर्षों में क़ैदी ने असाधारण

और बिलकुल असमीक्ष्य रूप से पढ़ा। कभी वह प्राकृतिक विज्ञान की पुस्तकें पढ़ता, कभी बायरन और शेक्सपियर को पढ़ता। प्रायः उसके पास से पुर्जे आते जिनमें वह एक साथ ही रसायन शास्त्र और वैद्यक-ग्रन्थ, उपन्यास तथा दर्शन और धर्मशास्त्र-संबंधी पुस्तकों की आकांक्षा करता। उसकी पढ़ाई कुछ इस प्रकार की थी मानों वह समुद्र में नष्ट पोत के भग्नावशेषों के बीच में तैरता उतराता हो और जीवन-रक्षा की चिन्ता में जिस किसी वस्तु पर भी उसकी दृष्टि जाती है उसी को पकड़ने को व्याकुल हो उठता है।

[३]

महाजन इन तमाम बातों को याद करता था और सोचता था। वह सोच रहा था—"कल बारह बजे वह अपनी स्वतंत्रता प्राप्त कर लेगा। प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे उसको दो लाख देने पड़ेंगे। यदि मैं देता हूँ तो बस मेरा तो निपटारा हो गया। हमेशा के लिए तबाह हो जाऊँगा।"

पन्द्रह वर्ष पहले उसके लाखों की कोई गिनती न थी। परन्तु इस समय वह स्वयं अपने मन से यह प्रश्न करते डरता था—"मैं किसका अधिक गर्व कर सकता हूँ, रुपये का या अपने ऊपर चढ़े हुए ऋणों का।"

जुआ खेल कर, सट्टेबाजी करके, और अपनी उस उच्छृंखलता के कारण जिससे वह बुढ़ापे में भी मुक्त नहीं हो सका था, उसका व्यवसाय धीरे-धीरे नष्टप्राय हो गया था। वह पुराना निःशंक, आत्मनिर्भर और गर्वीला व्यवसायी नहीं, बल्कि अब एक

साधारण महाजन रह गया था और बाज़ार के ज़रा-ज़रा से उतार-चढ़ाव पर उसे घबराहट होती थी। अपने सिर को दोनों हाथों से पकड़ कर उसने कहा—"ओह! वह मूर्खतावाली शर्त! वह मर ही क्यों न गया। अभी चालीस ही का तो है। मेरी एक-एक पाई मुझसे निचोड़ कर शादी कर लेगा, जीवन-भर मौज उड़ाएगा, सट्टेबाज़ी करेगा, और मैं एक भिखारी होकर यह सब देखूंगा और जलन से मरा करूंगा। रोज़ वह मुझसे कहा करेगा, मेरा यह सब सुख-वैभव तुम्हारे ही कारण है। मुझे भी तुम अपनी कुछ सहायता करने दो। नहीं, नहीं, यह सब मेरे सहन के बाहर है। बस, एक ही उपाय है, एक ही उपाय है, इस शर्मिन्दगी से बचने का—यह मनुष्य किसी तरह मर जाए।"

घड़ी में अभी तीन का घंटा बजा था। महाजन सुन रहा था। घर में हर कोई सोया हुआ था और सन्नाटा इतना था कि बाहर पाले से लदे हुए पेड़ों में हवा की मन्द सनसनाहट के अतिरिक्त और कुछ सुनाई न देता था। बहुत धीरे-धीरे, बिना कोई शब्द किए हुए, उसने अपने लोहे के सन्दूक में से उस द्वार की चाबी निकाली जो आज पन्द्रह वर्ष से नहीं खुला था। फिर अपना ओवरकोट पहन कर वह मकान से बाहर निकला। बग़ीचे में शीत और अन्धकार था। ओस से भीगी हुई वायु की तीक्ष्ण लहर गुरगुरा रही थी और वृक्षों को चैन नहीं लेने देती थी। अपनी ईक्षण-शक्ति पर भरसक ज़ोर देने पर भी महाजन को न भूमि दिखाई देती थी, न श्वेत पत्थर की मूर्तियाँ और न बग़ीचे के

वृक्ष। बाग़ के पार्श्व को प्राप्त कर उसने दो बार चौकीदार को आवाज़ दी। परन्तु कोई उत्तर न मिला। चौकीदार मौसम की निष्ठुरता से त्राण पाने के लिए कहीं रसोई-घर आदि में जाकर सो रहा था।

महाजन सोचने लगा—"यदि साहस करके मैं इस समय अपना काम बना लूं तो सब से पहले लोग चौकीदार पर ही सन्देह करेंगे।"

अन्धकार में सीढ़ियों और द्वार को टटोल कर वह बड़े कक्ष में पहुँचा। तब एक तंग से रास्ते में पहुँच कर उसने दियासलाई जलाई। वहाँ प्राणी का आभास भी न था। एक चारपाई पड़ी थी, परन्तु उस पर बिस्तरा न था और लोहे की एक अंगीठी अपनी कृष्णकाय गंभीरता से एक कोने में सो रही थी। बन्दी की कोठरी के द्वार पर जो जो ताले लगाए गए थे वे जैसे-के-तैसे लगे हुए थे।

दियासलाई के जल चुकने पर वृद्ध मनुष्य ने उद्वेग से काँपते हुए छोटी खिड़की के भीतर झाँका। बन्दी की कोठरी में एक मोमबत्ती धुंधला प्रकाश कर रही थी। बन्दी स्वयं अपनी मेज़ के किनारे एक कुर्सी पर बैठा था। केवल उसकी कमर, उसके सिर के बाल और उसके हाथ दिखलाई देते थे। खुली हुई पुस्तकें मेज़ पर, कुर्सियों पर और भूमि पर फैली पड़ी थीं।

पाँच मिनट बीत गए। परन्तु बन्दी एक बार भी न हिला। पन्द्रह साल के एकान्त कारावास ने उसको निश्चेष्ट बैठा रहना

सिखला दिया था। महाजन ने खिड़की पर धीरे-से अपनी उँगली से खुटखुटाया, पर इसके उत्तर में बन्दी की ज़रा सी चेष्टा तक न दिखलाई दी। तब महाजन ने सावधानी से तालों को खोला और चाबियों को तालों में लटका दिया। पन्द्रह वर्ष में तालों में जंग लग गई थी, जिसके कारण कुछ शब्द हुआ और द्वार ने भी अपनी झुंझलाहट का परिचय दिया। महाजन ने समझा कि इस शब्द से बन्दी तुरन्त उछल कर चिल्ला पड़ेगा और उसका पदशब्द सुनाई देगा। परन्तु तीन मिनट तक कोठरी के भीतर वैसी ही स्तब्धता रही जैसी कि पहले थी। महाजन ने सोचा, अब भीतर चलना चाहिए।

मेज़ के किनारे साधारण मनुष्यों से भिन्न एक नर-आकृति बैठी हुई थी। महाजन ने अपने सामने मनुष्य का केवल एक ढाँचा देखा जिसके ऊपर, मालूम होता था, खाल मढ़ी हुई है। स्त्रियों के-जैसे लम्बे-लम्बे घूमे हुए बाल थे और उलझी हुई दाढ़ी। चेहरे का रंग पीला, मिट्टी की भांति था, गाल भीतर को घुसे हुए, कमर लम्बी और तंग। जिस हाथ पर वह अपना सिर टेके हुए था वह इतना दुबला और चर्मभूत हो गया था कि देखने से दुःख होता था। उसके बाल सफ़ेद हो चले थे और उसके जरा-जन्य दुर्बल मुख को देखकर विश्वास करना कठिन था कि इसकी आयु अभी चालीस ही वर्ष की है। मेज़ पर, उसके झुके हुए सिर के नीचे एक कागज़ का पन्ना रक्खा हुआ था जिस पर छोटे-छोटे अक्षरों में कुछ लिखा हुआ था।

महाजन ने अपने मन में कहा, "अभागा बेचारा! शायद यह सो गया है और इस समय लाखों का स्वप्न देख रहा है। मुझे शायद कुछ भी न करना होगा। इसको उठा कर चारपाई पर पटक देने और आधा मिनट तक तकिए से पीटने से ही इसका काम तमाम हो जायगा और फिर अच्छी से अच्छी मृतक-परीक्षा भी नहीं बतला सकेगी कि इसकी स्वाभाविक मृत्यु नहीं हुई है।

परन्तु अपने संकल्प को कार्यरूप में परिणत करने से पहले महाजन को उत्सुकता हुई कि बन्दी के सामने रक्खे हुए काग़ज़ को पढ़े। बेचारे को क्या मालूम था कि इसके बाद वह और कुछ नहीं लिख सकेगा। उसके अन्तिम लेख को इस समय पढ़ने के कौतूहल को रोकने की महाजन ने चेष्टा नहीं की। फाँसी लगाने से पहले अपराधी को कुछ कहने का अवकाश दिया जाता है, इसी लिए कि उसके मरने से पहले उसे सब कोई सुनें। महाजन भी बन्दी को यह अधिकार देना चाहता था। कैसा अच्छा विनोद है।

महाजन ने मेज़ से काग़ज़ उठाया और पढ़ने लगा—"कल रात को बारह बजे मुझे मुक्ति मिल जायगी। मुझे लोगों से मिलने-जुलने का अधिकार प्राप्त होगा। परन्तु इस कोठरी को छोड़ने से पहले मैं तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। अपनी आत्मा की गवाही देकर, और सर्वान्तर्यामी के सामने, मैं तुमसे इस बात की घोषणा करता हूँ कि मैं इस स्वतंत्रता को घृणा की दृष्टि से देखता हूँ। मैं इस जीवन से घृणा करता हूँ। इस स्वास्थ्य से घृणा करता हूँ,

उन सब बातों से घृणा करता हूँ जिन्हें तुम्हारी ये बड़ी-बड़ी पोथियाँ जीवन का परम सुख बतलाती हैं।

"पन्द्रह वर्ष तक मैंने बड़े परिश्रम के साथ इस लौकिक जीवन का अध्ययन किया है। यह सच है कि इस बीच में मैंने न तो पृथ्वी के दर्शन किए और न मैं आदमियों से मिल सका, परन्तु तुम्हारे ग्रन्थों में मैंने सुरभि मदिरा का रसास्वादन किया है। मधुर रागनियाँ गाई हैं, हिरन और जंगली सुअर का शिकार किया है, स्त्रियों से प्यार किया है। कैसी स्त्रियाँ! आकाश के बादलों के समान सुन्दर, तुम्हारे लोकोत्तर कवियों की प्रतिभा से उपजी हुई! क्या तुम्हारा कभी ऐसी स्त्रियों से संसर्ग हुआ है? ये रात में मेरे पास आ-आ कर मेरे कानों के पास मुंह लगा कर मधुर और आश्चर्यलोक की कहानियाँ सुनाया करती थीं। मेरा सिर घूम जाता था। मैं मद से मतवाला हो जाता था।

"और सुनो। मैं तुम्हारी पुस्तकों में सँसार के ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ा हूँ और वहाँ से मैंने सूर्य का निकलना देखा है। वह सूर्य ऊषा को प्यार करता था और चलते समय अपने लाल-लाल ओठों की मुस्कुराहट से संध्या को आश्वासन दे जाता था। समुद्र और पहाड़ों की किनारियाँ उन ओठों की मुस्कराहट में रंग जाती थीं। फिर वहीं खड़ा-खड़ा मैं अपने ऊपर बिजलियों का चमकना देखता, बादलों का गरजना सुनता, मैं हरे-हरे जंगल और खेत देखता, नदी, नाले, झीलें और नगर देखता। मैंने विमोहिनियों के मधुर गायन सुने हैं, बीनों का बजना सुना है, और उन

चमक-दमक-वाले मायावी मुनियों के पैरों को छुआ है जो मुझसे ईश्वर के विचित्र सन्देश कहने के लिए उड़ कर आते थे।

" तुम्हारी पुस्तकों के भीतर मैंने अनन्त गुफाओं और खोहों में प्रवेश किया है, पाताल की खोज की है, बड़े-बड़े अद्भुत कर्म किए हैं—कितने ही नगरों को जला कर धूल में मिला दिया, कितने ही नए नए धर्मों को जन्म दिया, कितने ही द्वीपों और महाद्वीपों को विजय किया।

" तुम्हारी पुस्तकों ने मुझे बहुत सिखाया है। सैकड़ों शताब्दियों में उपार्जित किया हुआ मनुष्य का चिरन्तन विचार-गौरव मेरे इस छोटे से मस्तिष्कपिंड में ठसा पड़ा है। मैं जानता हूँ कि मैं तुम सब से अधिक बुद्धिमान् और ज्ञानशील हूँ।

"और मैं तुम्हारी पुस्तकों से घृणा करता हूँ। तुम्हारे संसार के अखिल सुख और ज्ञान से घृणा करता हूँ। सब निरर्थक, असार और क्षणभङ्गुर हैं—मरीचिका की भांति भ्रमपूर्ण और खेदजनक। तुम अपने रूप और ज्ञान का घमंड कर लो, परन्तु एक दिन मृत्यु तुमको इस पृथ्वी पर से इस तरह पोंछ लेगी जैसे चूहा बिल में समा जाता है। तुम्हारी भावी सन्तान, तुम्हारा भूत इतिहास, तुम्हारे प्रतिभा-सम्पन्न नररत्नों की अमरता, बर्फ की भांति जम जाएगी। एक रोज तुम्हारा पृथ्वीमंडल भी नष्ट होगा—उसी के साथ सब कुछ भस्म हो जाएगा।

" तुम पागल हो। उलटे रास्ते पर चल रहे हो। असत्य को सत्य समझते हो और कुरूपता को सुरूपता। तुम्हें आश्चर्य होगा

यदि अचानक तुम्हें दिखाई दे कि सेब और नारंगी के वृक्षों पर फलों के स्थान में मेंढक और कछुए लगने लगे हैं, या गुलाब के फलों से पसीने में नहाए हुए खच्चर की दुर्गन्ध आने लगी है। जिस प्रकार तुम्हें इन बातों पर आश्चर्य होगा उसी प्रकार मुझे तुम पर आश्चर्य होता है कि तुम स्वर्ग और पृथ्वी का विनिमय करने चले हो। मुझे तुम्हारी सभ्यता समझने की इच्छा नहीं है।

"जिन बातों को तुम सुख समझते हो, जिन बातों के लिए तुम जीते हो, उन सब से मुझे सच्ची घृणा है। इसका प्रमाण देने के लिए मैं उन दो लाख पर लात मारता हूँ जिनको किसी समय मैं स्वर्ग से अधिक समझता था और जिनको अब मैं हेय समझता हूँ। अपने को दो लाख के अधिकार से वंचित करने के लिए मैं निश्चित समय से पाँच मिनट पहले, अर्थात् आज रात को जब बारह बजने में पाँच मिनट होंगे, इस कोठरी से बाहर निकल जाऊँगा। इस प्रकार मैं अपनी उस प्रतिज्ञा को तोड़ दूँगा जिसको पूरा करने पर मैं दो लाख रुपये पा सकता था।"

पढ़ चुकने पर महाजन ने काग़ज़ को फिर मेज़ पर रख दिया। वह उस विचित्र बन्दी के चरण को दूर से चूम कर रोने लगा और वहाँ से चला गया। जीवन में कभी अपने ऊपर उसे इतनी घृणा नहीं हुई थी जितनी इस समय हुई। अपने मकान में आकर वह पलँग पर लेट गया, परन्तु संक्षोभ और अश्रुप्रवाह के कारण उसको बहुत देर तक नींद न आई।

दिन निकलने पर चौकीदार उसके पास आया और उसने

बन्दी के खिड़की से कूद कर भाग जाने का समाचार सुनाया। बन्दी बग़ीचे के फाटक से निकल कर न मालूम कहाँ ग़ायब हो गया था। महाजन उसी समय अपने नौकरों को लेकर वहाँ पहुँचा। चौकीदार का कहना सत्य था। जनवाद फैलने के भय से उसने बन्दी का लिखा हुआ वह काग़ज़ मेज़ से उठा लिया और उसे ले जाकर अपने लोहे के सन्दूक में सुरक्षित कर दिया।❀

❀ एन्टन चेकोव की एक कहानी।

उसका प्यार

गाँव भर में सबसे अधिक चिन्ता इस बात की यदि किसी को थी तो हरपिरभू को। वही तो उस गाँव का पिता था न। तो क्या यह उसका कर्तव्य न था कि उसके तमाम बालक उचित ढंग से उचित स्थल पर विवाह-सूत्र में बाँध दिए जायँ—कम-से-कम विवाह-सूत्र में तो बाँध ही दिए जायँ। क्या गाँव की प्रत्येक होनहार प्रजा का यह कर्तव्य न था कि युग-युगान्तर तक वह अपनी गार्हपत्य अग्नि को प्रज्वलित रक्खे और ऐसे हृष्ट-पुष्ट तथा बलिष्ठ पुत्ररत्न उत्पन्न करे जो ईश्वर की सेवा में अपना जीवन बिताएँ—मातृभूमि की सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग करें? वह उस गाँव की मिट्टी का सच्चा बेटा था—सच्चा, सीधा, भावुक और दयालु।

हरपिरभू मुंडाला गाँव का मुखिया था—एक पका फल जो हर घर में पहुँचता था, सबको सान्त्वना देता, उनके झगड़े मिटाता और उनके कर्तव्य सुझाता। नौ-जवानों का सबसे पहला कर्तव्य था कि वे विवाह करें—अपनी पसन्द का विवाह करें, इसमें कोई हरज नहीं, पर विवाह करें जरूर। इतने बड़े गाँव में हरेक युवक की पसन्द-लायक़ एक-एक लड़की अवश्य है। फिर क्यों कोई कोई भले लड़के अभी तक विवाह नहीं करते हैं?

और क्यों नहीं विवाह कर रहा है यह रामभुवन, या रामभौन जो अपना कमाता है, अपना खाता है और बीस-पच्चीस

बरस का हट्टा-कट्टा पट्ठा है। क्या इसलिए कि उसके मा-बाप जीवित नहीं हैं जो उसके ऊपर ज़ोर डालें? और हरपिरभू जो सबका बाप बैठा है सो? रामभुवन उसकी बातें सुन लेता है और दार्शनिक की तरह मुस्करा देता है।

तब तो एक दिन चौधरी ने दारू का कुल्हड़ ज़मीन पर रख कर अपनी चौपाल के सामने उसे रोक ही लिया और हाथ पकड़ कर उसे बिठा लिया। हाथ की उल्टी तरफ़ से अपनी बड़ी-बड़ी सुफ़ेद मूँछों पर से दारू के अवशेष को पोंछकर उसने रामभुवन के कन्धे को थोड़ा हिलाते हुए कहा, "अरे रामभौन, घर पे कौन सी जोरू रोटी लिए बैठी होगी? ले, ज़रा सी दारू पीता जा।"

रामभुवन ने ग़लत नहीं समझा। वह जानता था कि आज-कल चौधरी हरपिरभू को उसमें क्यों इतनी अधिक दिलचस्पी है। एक दो बातों के बाद ही उसने सुना—"जब मैं तेरी उम्मिर का था, तेरी उम्मिर का, तो मैं पूरा गिरिस्तीदार बन गया था—दो छोकरे और एक छोकरी का बाप बन गया था। तैने तो उसे देखा भी नहीं—छोरी-छोरों की मा को—कैसी भोली, कैसी नेक। मैं प्यार से उसे रानी कहा करता था।" स्मृति में कहीं कसक थी। चौधरी ने एक निश्वास लिया और अपने कुल्हड़ के पीछे मुंह छिपा लिया।

"हाँ, चौधरी काका, बाल-बच्चों से तो घर में बड़ी रौनक रहती होगी," ऊपर उठते हुए गुड़गुड़ी के धुएँ के साथ-साथ अपनी स्वप्निल आँखों को भी ऊपर उठा कर देखते हुए रामभुवन

ने कहा, "बाल-बच्चों से तो घर में बड़ी रौनक रहती होगी। मेरा मन बालकों की तरफ़ बड़ी जल्दी दौड़ता है, चौधरी काका।"

"अरे, तभी तो कहता हूँ एक बहू को घर में बुला ला," चौधरी ने विशेष ज़ोर देकर कहा, "तुम्हारा धरम भी यही है। ईश्वर ने तुझे खाने-पीने को बहुत दे रक्खा है। यह ठीक नहीं है कि तुम अकेले ही अकेले खाओ। जब क्वारे बुड्ढे होने लगेंगे तो क्वारियाँ भी बुड्ढी ही होने लगेंगी। बूढ़ी क्वारियों से फिर कौन ब्याह करता है?"

अपनी स्वप्निल आँखों को ऊपर ही किए-किए रामभुवन धीरे-धीरे बोला, "यह तो ठीक है। यह तो ठीक ही है। मैं खुद भी कई बार इस पर विचार कर चुका हूँ.....दूसरे के लिए परिश्रम करके कमाने और उसे खिलाने में बड़ा आनन्द है....."

चौधरी हरपिरभू का उत्साह बढ़ गया। उसने अपने मोटे-मोटे होठों को पोंछ कर सिमेटते हुए कहा, "हाँ, रामभौन, मैं हमेशा से समझता हूँ कि गाँव भर में तुझसे जादे समझदार कोई लड़का नहीं है। दूसरे के लिए ही कमाना अच्छा है। दूसरे के लिए कमाने में ही मजा है और धरम भी है। और मैं कई बार सोच चुका हूँ कि सितबिया की वह छोकरी हर तरह से तेरे लायक है—रामो। बिचारी भोली-भोली हिरनी जैसी, भगवान की भगत और बड़ी नेक है। बेकार पैसा खरच करना नहीं जानती और न उसमें कोई सौक ही है। हीरों के मोल भी सस्ती

है वह। रामू और रामो! रामू और रामो! यह जोड़ी तो भगवान ने ही अपने हाथ से बनाई मालूम होती है।

स्वप्नों से भरी आँखों में कुछ आनन्द की-सी रेखा दिखाई दी। रामू के होठों पर जरा सी मुस्कराहट आई और उसने बूढ़े काका के उत्साह में योग देते हुए कहा, "हाँ काका, रामो।—रामो लड़की तो अच्छी है। और उसके छोटे-छोटे हाथ—तुमने देखा है—कैसे मुलायम हैं।"

"हाँ हाँ, बस रामो ही तेरे लायक है, मैंने बहुत पहले से सोच रक्खा है। और उसकी माँ भला क्यों मना करने लगी। उसे तो सात गाँव में भी ऐसा वर नहीं मिलेगा ..... अच्छा देखो, मैं बातचीत में गोल-मोल ढंग से दोनों के मन का पता लगाऊँगा।" बूढ़े ने अपना खाली कुल्हड़ एक तरफ को रख कर विश्रंभ और रहस्य के ढंग से युवक की आँखों में देखा। वह जनम का सगाई-जोड़ा था।

परन्तु रामभुवन ने कुछ बेचैनी से चटाई पर करवट बदली। प्रार्थना के-से स्वर में वह कहने लगा, "इतनी जल्दी नहीं, चौधरी, इतनी जल्दी नहीं। मुझे जरा अच्छी तरह सोच लेने दो। जब तक कोई पूरी तरह यकीन न करले कि वह किसी लड़की को प्रेम करता है तब तक उसे विवाह नहीं करना चाहिए। इसमें लड़की के साथ अन्याय है। न मालूम, बाद में क्या नतीजा निकले।"

अब चौधरी को भी थोड़ी-सी बेचैनी हुई। रामभुवन के पिछले उत्तर से जो उत्साह उसमें जगमगाने लगा था उसके लिए

जब अब वायु के इस छोटे झोंके से आशंका पैदा हुई तो चौधरी हरपिरभू ने मुंडाला ग्राम में अपने इतने बरसों के बुढ़ापे का अधिकार संग्रह करके उस झोंके को रोकने की चेष्टा की—"प्रेम ! प्रेम ! अन्याय ! अन्याय !—हाँ हाँ, प्रेम के बगैर विवाह नहीं करना चाहिए, इसे मैं मानता हूँ। इसमें अन्याय भी है। पर तू उसे प्रेम नहीं करता तो उसके हाथों की क्यों तारीफ़ करता था ? " परन्तु खुर्राट चौधरी जानता था कि युवक रामभुवन से इस तरह बातें करने से काम नहीं चलेगा। रामभुवन गाँव के उन इने-गिने दो-चार व्यक्तियों में से था जिनके पास लोग चिट्ठी पढ़ाने या लिखाने जाया करते थे। वह स्वतंत्र विचार का मनुष्य था। गाँव के बड़े-बूढ़ों का आदर करता था पर अपना भी आदर करता था। इसलिए बूढ़े ने अधिकार का प्रयोग कर अब तत्काल ही अनुभव का पैतरा चला, " बेटे ! बेसक, प्रेम के बगैर विवाह करना अन्याय ही नहीं बल्कि पाप है। मैं तो इसे खुद मान रहा हूँ। और, तुम्हारे ऐसे अच्छे विचार हैं, तुम गाँव में सब से अच्छे लड़के हो, इसीलिए मैं चाहता हूँ कि तुम जल्दी ही किसी अपने मन की लड़की के साथ विवाह कर लो। अगर तुम्हें सन्देह है कि रामो को तुम प्रेम कर सकोगे या नहीं तो—और भी लड़कियाँ हैं। ठहरो—मुझे सोचने दो—हाँ हाँ, वह बिन्दो—वह बिन्दो—तुम कई बार उसे घर तक पहुँचाने भी गए हो।"

रामभुवन के होंठों पर तो वृद्ध की अधिकार-चेष्टा से कुछ मुस्कराहट ही दिखाई दी थी, पर अनुभवी उपचार ने उसे व्याव-

हारिक गंभीरता में परिणत करके रामभुवन से कहलाया, "बिन्दो बेचारी अंधेरे में अकेली घर जाती है और रास्ता खराब है। मैं उसे मिल गया तो उसकी इतनी सी सहायता कर दी। इसमें क्या है।"

एक क्षण को चौधरी के मुख पर फिर कुछ बादल से आए परन्तु चौधरी ने उन्हें दूर करके कहा, "नहीं नहीं, कोई हरज नहीं, कोई हरज नहीं.....मुझे तो कई बातों में रामो ही अच्छी दीखती है। पर बिन्दो ... वह भी अच्छी लड़की है ... कुछ थोड़ी-सी चंचल तो जरूर। पर गिरस्तन बनते ही चंचलता तो जाती रहेगी। अच्छा कभी तुमने उससे कोई इस तरह का संकेत भी किया है?"

"नहीं काका।"

"तो फिर इसारे-इसारे में कुछ बातें करके देखो न।"

वह स्वप्निल नेत्रों-वाला लड़का फिर चक्कर में पड़ा। इस बार उसकी बारी हुई कि वह अपनी गुड़गुड़ी को उठा कर एक तरफ़ रख दे—कुल्हड़ तो उसने लिया नहीं था। असमंजस के भाव से सिर नीचा करके, अपने दोनों हाथ भूमि पर टेक कर वह धीरे-धीरे बोला, "चौधरी काका, कोई जानना चाहे तो कैसे जाने कि वह किसी को प्रेम करता है या नहीं, या वह किसे प्रेम करता है? कैसे उसे पता लगे कि अमुक स्त्री को ही उसका हृदय चाहता है, और किसी को नहीं? कैसे इस बात का पता लगे।" रामभुवन का अनुमान था कि चौधरी अपने जीवन में दो विवाह कर चुका

है, इसलिए वह प्रेम के सम्बन्ध में अवश्य बता सकेगा। और उसने अपना यह अनुमान चौधरी पर प्रकट भी कर दिया।

और चौधरी भी अपने विवाहित जीवनों के इस संकेत से न मालूम कैसा-सा हो गया। चौधरी देखने में मध्यम आकार का, मोटा और गंजा था, जैसे बहुत से लोग होते हैं। संसार में वह व्यवहार-कुशल मनुष्य समझा जाता था—अकेला, और दूसरों को हर समय हर कठिनाई में निर्लेप भाव से सलाह देने को तैयार, मानो अपने व्यक्तिगत जीवन में लेप को उसने जाना ही नहीं था। परन्तु चौधरी ने दूसरे दिन देखे थे जो उसके भीतर की एक निधि थे, जिनकी जवानी गुप्त रूप से उसके भीतर कभी-कभी एक कसक पैदा करती थी और जिनकी जवानी उसकी वाणी में कभी-कभी उद्भासित हो उठती थी। संकेत को पाकर बूढ़े को अपने पिछले युग की याद आ गई, अपनी दोनों पत्नियों के चित्र उसकी आँखों के सामने खिंच गए और अपने उस जीवन की तमाम भावुकता उसके हृदय में जैसे हरी हो उठी। इस समय जब कि आगे बढ़ती हुई संध्या के पर्दे ने उसके चेहरे को युवक की आँखों से छिपा लिया था, युवक ने केवल उसकी बोलती हुई आवाज़ सुनी—और उस आवाज़ में एक नवकिशोर का-सा स्वर था। परन्तु कुछ उदासी की-सी झलक भी मौजूद थी।

"कैसे पता लगे! रामभौन, वह तुम्हें अपने से भी जादे प्यारी होगी। जिस समय तुम उसका ख्याल करोगे उस समय और किसी बात का ख्याल तुम्हारे मन में नहीं आ सकेगा।

वह तुम्हें तुम्हारी जान से भी जादे होगी। तुम्हें उसके लिए अपने प्राणों तक को दे-देने में कोई हिचकिचाहट नहीं होगी।"

चौधरी कह कर चुप हो रहा और रामभुवन भी सुन कर चुप बैठा रहा। दोनों कुछ देर तक सिर नीचा किए हुए चुपचाप बैठे रहे। युवक के प्रश्न और वृद्ध के उत्तर ने दोनों को एक साथ ध्यानस्थ कर दिया। बूढ़ा अपने अतीत की स्मृति में मग्न हो गया और भूल गया कि उसके पास कोई बैठा है जिसे उसको विवाह के लिए प्रवृत्त करना है। युवक भविष्य की विभिन्न सहयोगी और विरोधी कल्पनाओं में उलझ कर भूल गया कि अभी कोई व्यवहार-कुशल मनुष्य उसे विवाह के लिए प्रवृत्त करने को प्रेरणा के उपाय कर रहा था। उसके स्वप्निल नेत्र, दार्शनिक मन तथा भावुक हृदय ने कुछ मधुर और क्लिष्ट समस्याओं का जाल उसके सामने पूर दिया।

फिर उसने सहसा अपना मुंह उठा कर कहा, "अच्छा तो काका, अब चलूँ।"

संध्या ने अपना विस्तार कर लिया था।

[२]

परन्तु प्रसंग की बात—

रामभुवन का मकान नदी के उस पार, पुल से कुछ थोड़ी-सी दूरी पर, था जहाँ उसकी पनचक्की भी थी। यहाँ वह अपनी माता के साथ रहा करता था। चौधरी के पास से उठ कर जब

वह अपने घर जा रहा था तो पुल के ऊपर चन्द्रमा झाँकने लगा था, और चन्द्रमा की उस रहस्यमय दृष्टि के नीचे, पुल पर ही, रामभुवन की कोमल हाथ-वाली रामो आ रही थी। रामो उस समय मोदी के यहाँ से जलाने का तेल लेकर लौट रही थी। रामभुवन ने उसे पुकारा, "रामो, ओ रामो।" और उसने धीरे से कहा, "हाँ।" फिर दोनों दो-चार मिनट रास्ता-चलतों की बातें कर अपने-अपने घरों की ओर अग्रसर हुए।

और रामभुवन घर जाते-जाते सोचने लगा। सचमुच रामो कितनी भोली-भाली और मधुर है। उसके हाथ कैसे छोटे-छोटे और कोमल हैं। और जब वह अपनी हिरनी की सी आँखों को आधी उठाकर कुछ-कुछ शरमाती हुई सी उसकी तरफ़ कभी-कभी देखती थी तो एक प्रकार का आनन्द का प्रवाह-सा रामभुवन के समस्त में व्याप्त हो जाता था। कैसा-सा आनन्द था! रामभुवन ने पुनः उस आनन्द के अनुभव की कल्पना की और वास्तव में पुनः उसके भीतर एक तरह की लहर सी, एक तरह की सिहर सी, चमक गई। क्या रामभुवन इस रामो के लिए, अगर जरूरत पड़े तो, अपने प्राणों को नहीं बिछा सकता? रामभुवन ने निश्चय किया कि निःसन्देह वह रामो को प्यार करता है। अपने काल्पनिक चित्र में उसने देखा कि गाँव में लुटेरे आकर अत्याचार कर रहे हैं—जैसा कि उस समय स्थान-स्थान पर हुआ करता था—और ग़रीब रामो किसी तरह उनके हाथों में जा पड़ी है। पता लगते ही वह, रामभुवन, अपनी कुदाली लेकर विद्युत्-वेग से उनपर जा टूटता

है तथा क्षत-विक्षत हो जाने पर भी घंटा भर तक उन्हें हिलगाए रहता है जिससे रामो को बच भागने का अवसर मिल जाता है। बाद में उसका स्वयं क्या होता है इसकी उसे चिन्ता नहीं। रामो की रक्षा हो गई। उसे अपने प्राण देने में संकोच नहीं है। बस, बस, तो रामो ही उसके एकान्त अविभक्त प्रेम का आधार है...

और रात में जब तक वह जागता रहा, उसे बूढ़े के शब्द याद आते रहे—"जिसके लिए प्राण देने में भी तुम्हें संकोच न हो।" और वह प्रतिज्ञा करता रहा—"मैं खुशी-खुशी रामो के लिए अपने प्राण दे सकता हूँ।"

जब तक कि दिन नहीं निकला... ...

दिन निकलने के बाद जब अपनी चक्की को साफ़ कर-करा के वह दूसरी तरफ घूमा तो दिखाई दिया कि चुलबुली चमेली कन्धे पर नाज की टोकरी लिए खड़ी है और हँस रही है। यह चुलबुली और हठीली लड़की उसे अब भी वह बालिका ही दिखाई देती थी जिसके साथ वह बचपन से खेला था और जिसका पक्ष लेकर वह प्रायः अपने दूसरे साथियों से अच्छी तरह लड़ जाया करता था। जब चमेली अपने साथियों के किसी अन्याय पर मचल जाती और रोने लगती तो रामभुवन उसे धीरज बँधाया करता और उसके आँसू पोंछता। खेल में देर हो जाने पर जब थक कर वह सो जाती तो वह उसे गोद में उठा कर उसके घर पहुँचा जाता था। सैकड़ों बार ही ऐसा हुआ होगा। अब वही चमेली युवती हो गई है और रामभुवन युवक।

रामभुवन ने खेल के दिनों की याद करते हुए सोचा कि अब यदि चमेली पर किसी प्रकार का संकट पड़े तो क्या वह चुपचाप देखता रहेगा, वह जिसके शरीर की गठन ऐसी है कि दो तीन पट्ठों को मिल कर भी सहसा उससे भिड़ने का साहस नहीं हो सकता ? नहीं, वह उसके लिए अपने प्राणों की आहुति दे सकता है। चमेली संकट में ! विचारमात्र से उसका चेहरा लाल हो आया और उसके शरीर में कम्पन-सा मालूम होने लगा।

[३]

उस रोज़ काम से निबट कर वह दोपहर-भर अपने आप से बातचीत करता रहा। उसकी स्वप्निल आँखें न मालूम कहाँ-कहाँ क्या-क्या देख रही थीं और उसका भावुक हृदय क्या सोच रहा था। उसने अपने बारे में खूब जिज्ञासा की, अपने आपको समझने की बड़ी चेष्टा की, परन्तु उसकी समझ में कुछ न आया। क्योंकि रामो और बिन्दो और चमेली, सब ही, उसके प्राणों की अधिकारिणी हैं। और, यदि यों ही देखा जाए तो, गाँव की कौन सी लड़की उसके प्राणों पर अधिकार नहीं रखती। किसके कष्ट को देखकर वह आँखें मूंद लेगा और टस-से-मस नहीं करेगा ? अब वह बेचारी गंगिया कितनी ग़रीब है, और रात दिन परिश्रम करती-करती मरती है। फिर भी उसकी खूसट बुढ़िया मा उसे चैन नहीं लेने देती। और वह उदास चेहरे वाली गुलाबदेई ? उसके होठों पर कभी किसी ने आनन्द की मुस्कराहट ही नहीं

देखी,—बेचारी ऐसी डरी-डरी सी रहती है, मानो दुनिया-भर में उससे कोई मीठा बोलने वाला ही न हो। लम्बे-तड़ंगे बलिष्ठ रामभुवन को इन सब के प्रति एक वात्सल्य की अनुकम्पा-सी अनुभूत हुई और वह हाथ पर मुंह रख कर छत की ओर देखने लगा। तो क्या मैं सब को ही प्यार करता हूँ? बूढ़े ने कहा था—"उसकी चिन्ता में और किसी की चिन्ता ही तुम्हें नहीं हो सकेगी।" फिर किस तरह दूसरों की अपेक्षा केवल एक को ही अधिक प्रेम किया जाता है?

शाम को उसने चौधरी से पूछा।

और चौधरी ने धीरे-धीरे अपना सिर हिलाते हुए उसे बतलाया कि यह प्रेम नहीं है। यदि इसी तरह दुनिया में हुआ करता तो उसका न मालूम क्या परिणाम होता। नहीं नहीं, ईश्वर ने सृष्टि की रचना ऐसे आधारों पर नहीं की है। प्रेम एक ही को किया जाता है। एक ही को प्रेम करो। उसको छोड़ कर संसार में और किसी से तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं।

"पर तुमने तो स्वयं, चौधरी काका," रामभुवन ने संदेह दिखाते हुए कहा, "तुमने तो स्वयं दो स्त्रियों से विवाह किया था?"

"पर एक दफे में एक ही के साथ तो। एक दफे में एक ही के साथ तो, रामभुवन। तू इसे नहीं समझता क्या? यह तो बिलकुल दूसरी बात है।"

ओहो! रामभुवन अब क्या करे? कैसे समझे? रामभुवन

निराश है। उसके हृदय में पीड़ा है। संसार-भर में क्या अकेला वही ऐसा अभागा है जो प्रेम को नहीं समझ सकेगा, प्रेम का आस्वादन नहीं कर सकेगा ? वास्तव में वह कितनी मनोहर चीज़ है, कितनी अद्भुत वस्तु है—यह प्रेम—जिसके बिना मनुष्य मनुष्य नहीं, जीवन जीवन नहीं—जिसके बिना आदमी इस पृथ्वी पर एक निरर्थक टुकड़खोर, या फिर एक अत्याचारी भुक्खड़, है जो दूसरों के धन को लूट-लूट कर अपने लिए संग्रह करता है। क्या वही प्रेम युवक रामभुवन के नसीब में नहीं है ? क्या वह केवल अपने लिए ही दूसरों के धन और प्राणों का संचय करता रहेगा ?

[४]

इसी तरह रामभुवन ने महीनों तक सोचा और सोचा, और कोई समाधान न पाया।

बरसात आ गई थी और नदी लासा यद्यपि कुछ मैली सी दिखाई देने लगी थी, परन्तु उसमें यौवन का कुछ गर्व और वेग आ गया था। गति में मतवालापन था और इठलाहट थी।

दिन में एक अच्छी बौछार हो चुकी थी और तीसरे पहर के समय मृदु सूर्यताप के साथ आकाश के बादल के टुकड़े क्रीड़ा कर रहे थे। रामभुवन को परिश्रम की सुस्ती सी मालूम हो रही थी, सो वह लासा के किनारे लकड़ी के एक बड़े भारी लट्ठे के ऊपर आ बैठा और नदी के मान और क्रोध का प्रदर्शन देखने लगा।

इस लासा से वह कैसा अच्छा परिचित था, बचपन ही से। जीवन के एक भाग में अपने भोले-भाले देहाती साथियों के साथ वह इसके किनारे खेला, इसके किनारे व्यायाम और कुश्ती द्वारा उसने अपना शरीर बनाया, इसके किनारे उसने अपने व्यवसाय का काम करना सीखा। उसकी आँखें हमेशा से स्वप्निल थीं। उन पिछले ज़मानों में भी अपने स्वप्निल नेत्र और भावुक हृदय को लेकर वह असंख्य बार लासा के किनारे एकान्त में बैठा है और उसका संगीत सुनता रहा है, उसकी लहरियों के नृत्य को तन्मय होकर देखता रहा है। कितनी बार उसने उससे बातें की हैं और उसकी कलबल-कलबल के विभिन्न स्वरों में अपनी बातों का उत्तर पाया है।

और आज भी वह यहाँ अपनी एक जिज्ञासा को लिए हुए ही बैठा है और नदी के क्षण-क्षण बदलते हुए हाव-भाव में उसका उत्तर पाने की चेष्टा कर रहा है। उन जंगम जल-चित्रों की गति में उसे कहीं रामो दिखाई देती है, कहीं बिन्दो, कहीं चमेली कहीं गंगिया, कहीं गुलाबदेई और कहीं...कौन ?—सारा गाँव ? और लासा, वह उसकी बाल-सहचरी—उसके प्रति भी उसका अगाध प्रेम है, जैसी कि वह स्वयं कहीं-कहीं अगाध है। कभी-कभी उसके जी में होता है कि कैसे इस सम्पूर्ण का आलिंगन कर लूँ। और वह प्रेम कहाँ है जिसमें एक को छोड़कर दूसरी की तरफ़ मन ही नहीं जाता। अभी तक उसका पता नहीं लगा। क्या कभी लगेगा ?

बेला ने उसको उदास-सा देख कर अपनी नाक उसके हाथ में अड़ा दी। बेला भी आजकल कुछ-कुछ बुज़ुर्ग, कुछ-कुछ गौरव-शालिनी-सी बन रही है। क्यों, क्या वह पाँच हृष्ट-पुष्ट सन्तानों की माता नहीं है? अभी, हाल में ही, उसने एक साथ पाँच पिल्लों को जन्म दिया है—ऐसे पिल्ले जैसे कि बेला की दृष्टि में अड़ोस-पड़ोस में कहीं भी न होंगे। ये हर समय हर जगह उसकी टाँगों के नीचे दौड़ते-फिरते हैं और उसके हृदय को ऊँचा करते रहते हैं। रामभुवन से उन्हें भी सहानुभूति हुई और वे लट्ठे से लटकती हुई उसकी टाँगों पर चढ़ने का प्रयास करने लगे। रामभुवन का ध्यान नदी की ओर से हट कर उनकी ओर आकृष्ट हुआ और उसने नीचे को झुक कर अपने हाथों में एक-एक पिल्ले को उठा लिया। परन्तु इससे तो उस मंडली में एक क्रान्ति-सी मच गई। रामभुवन के स्नेहदान से वंचित रह कर शेष तीन ने बड़ा ऊधम मचाया। उन्होंने जगह-जगह उसकी टाँगों में सिर अड़ाना या चाट-चाट कर उसका स्वाद लेना आरम्भ कर दिया। तब रामभुवन ने उन दोनों को लट्ठे पर बिठा दिया और पाँचों के पाँचों उछल-कूद कर उसके शरीर पर नाचने, उसके बालों को खींचने तथा उसके चेहरे पर अपने छोटे-छोटे पंजों से प्रहार करने लग गए। इसी समय उन्हें नदी के किनारे-किनारे बहता हुआ किसी पक्षी का एक पंख दिखाई दे गया और वे अपनी सेना बना कर उस पर आक्रमण करने के लिए दौड़ गए। रामभुवन बैठा-बैठा इन निश्चिन्त खेलने-वाले छोटे नटखटों की

ओर देखता रहा—वे आश्रयविहीन, मूर्ख, नन्हे-नन्हे प्राणबिन्दु जिन्हें रक्षा और देख-रेख की कितनी भारी आवश्यकता थी। रामभुवन ने देखा कि उसके हृदय में उनके लिए स्थान की कमी नहीं है।

फिर उसी समय एक मादा चिड़िया अपने घोंसले से निकल कर उसके सिर पर आकर बैठ गई। रामभुवन ने सिर हिलाया कि वह उड़ गई। उसने उठ कर धीरे-धीरे जाकर घोंसले में झाँका। घोंसले में मादा के नवजात कुलबुला रहे थे। चिड़िया ने एक बार रामभुवन की तरफ़ देखा और फिर अपने काम में लग गई। किसी को भी रामभुवन से डरने की क्या ज़रूरत थी। छोटे-छोटे मक्खी-भुनगे-मच्छर उसके सिर और पैरों के इधर-उधर भिनभिनाते थे। वही क्या उससे डरते थे? नहीं नहीं, रामभुवन से डरने की किसी को आवश्यकता नहीं है। उसके हृदय में संकोच नहीं है। एक बूढ़ा उधर से निकला और उससे "भैया, राम राम" कहता हुआ अपने रास्ते चला गया। हवा के मन्द झोंके ने पत्तों के कान में कुछ कहा जिस पर वे हँस पड़े। मन्द झोंका भी अपने मार्ग से चला गया और पत्ते रामभुवन के सामने ज़रा-सा नाच उठे।

"आहा, यदि मैं तमाम गाँव से, गाँव की प्रत्येक वस्तु से, विवाह कर सकता," रामभुवन ने सोचा। फिर वह बड़ी ज़ोर से हँस पड़ा और बोला, "क्या मैं पागल हो रहा हूँ।"

[५]

बरसात जो बीती तो साहस-कर्मियों का मौसम शुरू हो गया। उन दिनों देश में एक प्रकार की अराजकता फैल रही थी। एकच्छत्र मुसलिम शासन के क्रमानुगत ह्रास के कारण जिसकी जहाँ बन पड़ी वह वहीं का चार दिन के लिए नवाब बन गया। ज़िले का ज़िलेदार या नाज़िम भी एक नवाब था और कहीं चार-पाँच गाँव पर आतंक जमा कर अत्याचार करनेवाला एक लुटेरा डाकू भी एक नवाब बन गया था। ये सब नवाब अपने गाँवों की प्रजा पर स्वयं अत्याचार करते थे, उनका ख़ून चूसते थे, और मौक़ा लगते ही आस-पास के गाँवों में भी लूट-पाट कर आते थे। यह बात नहीं कि ये लोग केवल प्रजाओं अथवा हिन्दुओं पर ही अपना दाँत रखते हों। ये लोग अक्सर देखा करते कि किस प्रकार अपने समीपतर नवाब की गुप्त रूप से हत्या करा कर उसकी ज़मींदारी को हस्तगत कर लें और उसके परिवार की स्त्रियों को अपने हरम में दाखिल करें। इस प्रकार जो आज नवाब था उसके कल के भाग्य का पता नहीं था और इसी प्रकार प्रत्येक नवाब स्वप्न देखा करता था कि वह अपने वलीअहद के लिए अकबर या औरंगज़ेब का साम्राज्य स्थापित कर जाएगा।

इन लोगों की सेनाएँ सौ-सौ, दो-दो सौ, चार-चार-सौ हथियारबन्द व्यक्तियों के गिरोह होते थे जिनमें ऊपर से तो जहाद का जोश रहता था परन्तु जिनके भीतर अत्याचार की वासना, धन-

लिप्सा और व्यभिचार-प्रवृति जोर मारा करती थी। ये गिरोह पड़ोस के किसी निराश्रय गाँव को ताक कर उसके चारों ओर, सेनाओं की भाँति घेरा डाल देते और जब तक वहाँ खूब मनमानी न कर लेते तब तक वहाँ से न जाते। घरों में आग लग जाती, क़त्ले-आम मच जाता, स्त्रियों की दुर्गति होती, धन-दौलत नाज-बर्तन सब कुछ लुट जाते और त्राहि-त्राहि मच जाती। जब तक किसी गाँव को पूरी तरह से वीरान न कर देते तब तक इन जहाद-वालों को सन्तोष न होता।

परन्तु ईश्वर की कृपा से मुंडाला ग्राम में अभी तक दूसरी बात थी। यहाँ का पुश्तैनी जमींदार एक जाट था जो और भी अनेक गाँवों का स्वामी था। इसके पास अपने ही प्रजावर्ग में जहाद करने का कोई कारण नहीं था और अपने पड़ोसी नवाबों से सम्पत्ति और बल में बहुत बड़ा होते हुए भी उसने देश के ऐकाधिपत्य का स्वप्न नहीं देखा था। इसलिए वह दूसरों की नवाबी में प्रवेश भी नहीं करता था। परन्तु उनके आक्रमणों से अपने को सुरक्षित रखने के लिए अपनी आन्तरिक शक्ति को ही दृढ़ बनाने की चेष्टा में रहता था। फलतः, यद्यपि वह आसपास के नवाबों की दृष्टि में बहुत खटकता था, उसकी जमींदारी में आक्रमण करने का किसी अकेले नवाब को हौसला न हुआ था। इससे पहले वे लोग—'नवाब'—अन्य स्थानों के विनाश द्वारा ही अपनी स्थिति को अधिक मजबूत कर लेना उचिततर समझते थे। ऐसी परिस्थिति में जाट की प्रजा अभी तक जहादों के परिणामों

से बची हुई थी; सुखी थी और सम्पन्न थी। यह बात दूसरी है कि एकाध जगह दस-बारह आदमियों के साधारण गिरोह गुपचुप आकर कभी रातों-रात कहीं-कहीं डाका डालकर भाग गए हों।

परन्तु इस बरसात के बीतते ही किसी ने जाट जमींदार का गुप्त बधकर डाला। बध पड़ोसी नवाब के षड्यंत्र से ही हुआ है इसमें किसी को संदेह नहीं था। मुंडाला ग्राम उसकी जमींदारी की सीमा पर ही था। जमींदार के वध का समाचार मुंडाला में भी पहुँचा और ग्रामवासियों के हृदय में भय का संचार हुआ। लोग डरे कि अब जाट के राज्य में भी उन्हीं दृश्यों के दर्शन होंगे जिनके प्रभाव से अन्य स्थान तहस-नहस हो रहे थे। और सब से अधिक संकट मंडाला पर आएगा क्योंकि वह सीमा पर ही है। मुंडाला के वासी अपने राम और कृष्ण को मनाने लगे। गिरवर-धारी की पुकार होने लगी।

और इसके कुछ समय बाद ही बीस-पचीस आदमियों की एक टुकड़ी दिन-दहाड़े मुंडाला में चक्कर लगा गई और थोड़ा-बहुत उत्पात भी कर गई।

फिर एक पचास आदमियों का गिरोह आया और गाँव के सीमान्त जंगल में टिक गया।

कोई अपने धन को जमीन में गाड़ने की चिन्ता कर रहा था, कोई अपने बाल-बच्चों को किसी दूसरे गाँव में भेज देना चाहता था, बूढ़े लोग अयोध्यावासी और कंसारी की टेर लगा रहे थे। सब का दैनिक आचरण और कारबार अव्यवस्थित होकर सहसा

रुक गया था। परन्तु स्वप्निल आँखोंवाला रामभुवन लासा के पास लट्ठे पर बैठा हुआ कुछ और सोचता था।

रामो और बिन्दो और चमेली...इन सब में से किसी का भी प्रेम उसके भाग्य में नहीं है। किसके लिए वह अपने प्राणों को मना कर सकता है, स्त्री का प्यार उसे नहीं मिलेगा। और फिर वह लड़खड़ाता हुआ अपाहिज वृद्ध जो रोज़ उससे 'भैया' कह कर 'राम राम' कर जाता है और घड़ी भर उसके पास बैठ कर विश्रंभ की बातें कर जाता है? क्या संकट में उसकी रक्षा रामभुवन नहीं करेगा?

संकट में! ओह! रामभुवन का तमाम शरीर थरथरा उठा। चेहरा लाल हो गया। हृदय के भीतर आकुलता, बेचैनी होने लगी...एक मसोस का दरद सा, एक फड़क सी। संकट में! संकट तो उपस्थित है ही। इससे बड़ा और कौन संकट होगा? उसकी रामो और बिन्दो और चमेली की क्या-क्या दुर्दशा ये मांस के गिद्ध करना चाहेंगे। वह जो इतना भरोसा रखता है, उस अपाहिज वृद्ध की कौन खबर लेगा। उसकी बेला की पाँच सन्तानें क्या फिर भी निश्चिन्तता के साथ उछल, कूद और फुदक सकेंगी? जलते हुए गाँव में अपने नवजातों की रक्षा के लिए मादा पक्षी किसे पुकारेगी। क्या फिर भी मन्द पवन के झोंके मुँडाला के पत्तों और टहनियों से रहस्य की बातें करने आ सकेंगे? क्या रामभुवन के देखते-देखते प्यारी लासा का संतर्पण जल मुँडाला के रक्त से कलुषित होकर गाँव की भस्म को अपने

प्रवाह में ढोया करेगा ? रामभुवन का वक्ष विशाल हो गया। स्वप्निल आँखें जाग पड़ीं। स्वप्न यथार्थ हो गया। भावुक हृदय में आधार की रिक्तता नहीं रहो। स्त्री का प्रेम उसे नहीं मिला तो न सही। अपने देश का, गाँव का, प्रेम ता उसे अवश्य मिल सकता है। इसमें कौन प्रतिद्वन्द्वी है ? वह मुँडाला के लिए, केवल मुंडाला के लिए, अपने प्राणों को अर्पण कर सकेगा—और किसी वस्तु का ध्यान वह नहीं करेगा।

[६]

पचास आदमियों का गिरोह दो-चार रोज़ घेरा डाल कर और एक दो जगह हाथा-पाही करके ही लौट गया। मुंडाला गाँव ज़मींदारी में सब से बड़ा था और उसमें बहुत से जवान पट्ठे थे जो सदा लाठी बाँध कर चलते थे। रात में गाँव के लोग जाग कर पहरा दिया करते थे जिससे कोई आग न लगा जाए। इतना यह रामभुवन के एक रात के सङ्गठन का परिणाम था। पर सब लोग डरे हुए थे कि शीघ्र ही एक बहुत बड़े अन्य आक्रमण का सामना करना होगा जिसमें सैकड़ों आदमियों से पाला पड़ेगा।

रामभुवन सोचता था कि अन्तिम परिणाम तो शायद प्राण-समर्पण ही होगा। परन्तु वह तो हर तरह से ही होगा। तब जल-भुन कर क्यों प्राण दिए जाएँ। क्यों न रामो और बिन्दो और चमेली और बेला-परिवार तथा लासा की लाज-बचाते हुए उनका उत्सर्ग हो। जिस किसी के भी यहाँ भाला, किरच, तलवार, कुल्हाड़ी, खुरपी—जो कुछ भी, था वह सब निकाला जाकर ताज़ा

किया जाने लगा। रामभुवन को एक क्षण का अवकाश न था। सोने बैठने की कौन कहे।

परन्तु ऐसा मालूम हुआ कि देश का प्रेम भी शायद उसके भाल में नहीं लिखा है। उसकी माता यकायक एक रोज़ बिना कहे-सुने बीमार पड़ गई और रामभुवन के लिए अजीब धर्म-संकट उपस्थित हो गया। जो रामभुवन रामो, बिन्दो, नन्दो या चन्दो के लिए अपने प्राण दे सकता है वह क्या अपनी माता से अपने प्राणों को किनारे रख सकता है, उसको मरने के लिए छोड़ दे सकता है? परन्तु संकट यह था कि वह उसकी चिकित्सा, शुश्रूषा में लग कर भी उसे बचा सकता है, इसे कौन जाने? कौन जाने आततायियों का दूसरा भयंकर गिरोह कब आ धमके? और उस समय तो रोग से ही नहीं, इन पिशाचों से भी, चारपाई पर पड़ी हुई उस बुढ़िया की रक्षा करनी होगी। यही दुष्कर था। क्या ख़बर, उसे जलते हुए मकान के भीतर ही झुलसना पड़ जाए। चलते-फिरते आदमी की रक्षा तो हो सकती है।

उसी ज़मींदारी के एक दूसरे गाँव में उसके मामा का घर था। रामभुवन ने सोचा कि इस समय माता की रक्षा का श्रेष्ठ उपाय यही है कि उसे वहाँ पहुँचा आए। उसके पास दो तेज़, तन्दुरुस्त बैल थे और एक गाड़ी थी। आज अपनी मा को ले जाकर कल तक वह लौट सकेगा। यह एक रोज़ जो उसकी देशसेवा के पावने में से निकल रहा है उसका रामभुवन को खेद अवश्य है। मगर एक रोज़ ही तो . और कर्तव्य की मजबूरी है।

[७]

जब वह लौट रहा था तो मुंडाला से पाँच सात मील दूर, एक दूसरे गाँव की सीमा पर, झाऊ के जँगल से किसी के कराहने की आवाज़ आती हुई उसे सुनाई दी। रामभुवन ने अपनी गाड़ी रोक ली। कुछ क्षण ठहर कर फिर वैसी ही एक कराहट हुई। रामभुवन बैलों की रस्सी एक पेड़ से बाँध कर शब्द की दिशा में लपका। कराहट बार-बार सुनाई दे रही थी जिससे दिशा और स्थल का अनुमान करके उसके पास पहुँचने में, उसे देर न लगी। यहाँ बड़े-बड़े पेड़ों के पीछे लम्बी-लम्बी घास में पाँच व्यक्ति औंधे पड़े हुए थे। रामभुवन देखकर सन्न रह गया। परन्तु समझना कठिन न था। उनमें दो हिन्दू तथा तीन मुसलमान थे।

यद्यपि रामभुवन स्वयं अपने गाँव में संगठन करके लोगों को मरने और मारने के लिए तैयार कर रहा था, तथापि इस प्रकार के संघर्षों या उनके परिणामों का प्रत्यक्ष उसने अपने जीवन में कभी नहीं किया था। युद्धों तथा मारपीट के प्रसंगों का उसका ज्ञान केवल सुना हुआ ही था। अब इन पाँच व्यक्तियों को क्षत-विक्षत, ख़ून से लथपथ, सहायक-विहीन दशा में, जिसमें एक कुत्ता भी आकर उनको ठोकर मार जा सकता था, देख कर वह भावुक युवक यदि स्तम्भित रह गया तो क्या आश्चर्य है? उसके हृदय में करुणा का आविर्भाव हुआ।

उसने परीक्षा करके देखा। दो हिन्दू तथा तीन मुसलमान। मुसलमान! इस शब्द से संसर्ग रखनेवाले तमाम भावों का उदय

होते ही उसकी करुणा का लोप सा होता दिखाई दिया। क्या इन लोगों ने ही ग़रीब निरीह प्रजाओं का जीवन हराम नहीं कर रक्खा है ? क्या इस स्थान पर इन तीन व्यक्तियों ने ही शेष दो निरपराध व्यक्तियों की जानें नहीं ली हैं ? करुणा के स्थान में क्रोध और कठोरता का आविर्भाव होना ही चाहता था।

इतने में ही वह अति दर्दभरी कराहट फिर जाग गई। रामभुवन जैसे नींद में अपनी भाव-परम्परा से नीचे फिसल कर जाग पड़ा हो। उस कराहट का दर्द उसके दिल तक पहुँच गया। उन पाँच व्यक्तियों में से, उन तीन मुसलमानों में से, अभी एक जीवित था। रामभुवन ने उसकी ओर घूम कर देखा तो उसने बड़े कष्ट से कुछ इशारा किया। रामभुवन ने उसका इशारा कुछ-कुछ समझा। उसने बड़ी सावधानी से घायल व्यक्ति को उठाया और उसे धीरे-धीरे अपनी गाड़ी पर ले जाकर लिटा दिया। फिर वह थोड़ी दूर इधर-उधर पानी की तलाश में गया। परन्तु पानी कहीं नहीं मिला।

रामभुवन गाड़ी को तेज़ी से आगे ले चला। सौभाग्य से जंगल बहुत लम्बा-चौड़ा नहीं था और उसके छोर पर ही, कोई आधा मील जाने के बाद, उसे एक झोपड़ी दिखाई दी। रामभुवन ने देखा कि यह झोपड़ी हिन्दुओं की है। उसने झट घायल व्यक्ति की तुरकी टोपी उतार कर अपने कपड़ों में छिपा ली और उसे उतार कर झोपड़ी के पास लिटा दिया। जल्दी से पानी मँगवा कर पिलाया जिससे घायल की आँखें कुछ खुल-सी गईं और उसने

कृतज्ञतापूर्ण दृष्टि से रामभुवन की ओर देखा। रामभुवन ने इशारा करते हुए उससे धीरे से कहा, "चुप, कुछ बोलना नहीं। अपने को हिन्दू बताना। तुम्हारा नाम सूरजसिंह है।"

जब सूरजसिंह को आराम के साथ झोपड़ी के भीतर सुला दिया गया और उसके घावों को बाँध-बूँध दिया गया तो रामभुवन कुछ निश्चिन्त-सा हुआ। निश्चिन्त होकर वह जैसे अब अपने संसार में आ गया। अपने संसार में आते ही उसे एकदम चक्कर आने लगा। वह जैसे एक बड़े विचित्र से स्वप्न से उठा हो, जो अभी तक भी उसका पीछा नहीं छोड़ रहा है और जिसके परिणाम में एक पाप की सी विभीषिका है। उसने यह क्या किया! एक मुसलमान को, देश के एक शत्रु को, जीवन-दान दिया है। देश के शत्रु की सहायता करना स्वयं देश की शत्रुता करना है। न मालूम, इसने कितनों पर अब तक अत्याचार किया है और अच्छा होकर कितनों पर करेगा। रामभुवन माथे पर हाथ रख कर सोचने लगा। बहुत देर तक सोचता रहा। उसकी विचार-धारा में अपने देश, ग्राम के प्रति विश्वासघात करने के अपराध की भावना बड़ी तीव्र हो चली। क्या इस अपराध का कोई प्रायश्चित्त हो सकेगा?

रात में वह सूरजसिंह के पास ही सोया। उसे नींद कम थी। उसके मन में पाप और विश्वासघात और प्रायश्चित्त के ही विचार चक्कर मार रहे थे। परन्तु विचार-सागर में भी लहरें आया करती

हैं। एक लहर आकर दूसरी लहर को दबा देती है। रामभुवन के विचारों ने पलटा खाया।—

"पर क्या सचमुच मैंने कोई पाप या अपराध किया है? एक मरते हुए मुसलमान की रक्षा की है, इसलिए? उसने मुसलमान घर में जन्म लिया, यह तो प्रकृति का संयोग है। मुसलमान ही क्या, अत्याचार करनेवाला तो कोई भी हो सकता है। वह जब अत्याचार करने आएगा तो हम देख लेंगे और अपनी रक्षा करेंगे। परन्तु इस दशा में कौन किसका वैरी है और कौन किसका मित्र? और कौन ही मुसलमान है और कौन ही हिन्दू? वह अब केवल एक मनुष्य है, और कुछ नहीं। जहाँ वे अन्य चारों चले गए हैं वहाँ जातिभेद नहीं है। तो एक मनुष्य की सहायता करना क्या दूसरे आदमी का धर्म नहीं है? जब मनुष्य होकर मैं मनुष्य से ही सहानुभूति नहीं रख सकता, मनुष्य होकर मनुष्य से ही विरोध करूँगा, तो देशवासी होकर देशवासियों से कैसे सहानुभूति कर सकूँगा। क्या एक समय ऐसा नहीं आ सकता जब उनसे भी विरोध करने लगूँ?

"नहीं नहीं, जैसे भाव अभी-अभी मेरे हो रहे थे वे तो प्रतिहिंसा के भाव हैं। वे मनुष्य के नहीं, राक्षस के भाव हैं। उनमें न मनुष्यता है, न देशप्रेम है। यह मनुष्य यदि बच गया तो शायद मेरा मित्र ही बनेगा। पर नहीं, मैं अपने निज की बात नहीं सोच रहा हूँ। मेरा यह मित्र बने या शत्रु, इससे क्या। इस समय मेरे

लिए यह एक मनुष्य-भर है। एक पीड़ित मनुष्य की भरसक सहायता न करने से मैं अपने को मनुष्य नहीं कह सकूँगा।

"और मुंडाला? वहाँ के काम में देर में देर हो रही है। पर मैं क्या करूँ? ईश्वर की इच्छा में मैं कौन हूँ बाधा डालनेवाला। शायद स्त्री-प्रेम की भाँति देशप्रेम भी मेरे भाग्य में नहीं है। नहीं तो ऐसे ही अवसर पर क्यों मेरी माता बीमार पड़ती और क्यों यह मनुष्य अर्द्धमृत अवस्था में मुझे मिलता? तो मैं मनुष्य-प्रेमी ही बनूँगा। यहाँ इसकी सेवा-शुश्रूषा में शायद दो-चार दिन लग जाएँ। मुंडाला के लोग शायद मुझे कायर समझेंगे। समझ लें तो...उनके ऊपर निकट भविष्य में ही संकट आने की संभावना है...मैं उनके लिए अपने प्राण दे सकता हूँ। पर वे कुछ-कुछ तैयार हो चुके हैं। इस समय मेरी यहीं अधिक जरूरत है, यहीं अधिक जरूरत है। इसे छोड़ जाना भी कायरता होगी। कायर मनुष्य क्या कभी भी दूसरों के लिए अपने प्राण दे सकता है? इसकी थोड़ी-सी भी बे-फ़िक्री की हालत होते ही मैं मुंडाला चला जाऊँगा।..."

रामभुवन को इसी तरह सोचते-सोचते धीरे-धीरे नींद आ गई और वह बड़ी अच्छी तरह सोया। दिन निकलने पर उसने अपने रोगी का हाल पूछा। वह रात में बीच-बीच में कराहता रहा था, परन्तु बाद में वह भी कुछ सो गया था। जागने पर उसके चेहरे पर रामभुवन को सजीवता के कुछ विशेष चिन्ह दिखाई दिए। उसकी पीड़ा भी कुछ-कुछ कम थी। रामभुवन को अपार हर्ष हुआ।

लेकिन रामभुवन को वहाँ एक सप्ताह ठहरना पड़ गया। इस बीच में उसने अपने को भूल कर रोगी की सेवा की। उसके परिश्रम से एक सप्ताह में रोगी की अवस्था ऐसी हो गई कि रामभुवन अपने को उसकी ओर से निश्चिन्त कह सकता था। जिन लोगों ने इन दोनों को आश्रय दिया था वे भी अब इस बात के लिए तैयार थे कि रोगी सूरजसिंह का शेष भार अपने ऊपर लेकर रामभुवन को उसके गाँव चला जाने दें। दोपहर-पीछे रामभुवन ने मुंडाला के लिए अपने रोगी और आश्रयदाताओं से विदा ली।

[८]

गाँव की तरफ़ चलने को तो वह चला, परन्तु उसके हृदय पर जैसे कुछ बोझ सा हो—सो भी ऐसा वैसा क्यों, उसके जीवन तन्तुओं में खींचा-तानी करनेवाला बना हुआ था जो। ज़िन्दगी-भर की एक साध, आदर्शों से ठोक-ठोक कर पोसी हुई एकमात्र भावुकता जिसके बिना उसके स्वप्नमय यथार्थ में जीवन की यथार्थता ही नहीं थी, उसके पैरों को आगे बढ़ने से रोकती थी और आगे ढकेलती थी। उसने मनुष्यता की सेवा करके एक व्यक्ति की जान बचाई, उसे इस बात के लिए कोई खेद न था—एक सप्ताह उसने इसी के नशे में काट दिया था। परन्तु वह अतीत की बात हो गई। वर्तमान अतीत को अभिभूत करके अब उसका आव्हान कर रहा था। वह ललकार रहा था कि एक व्यक्ति की, मनुष्य ही की, रक्षा करके अब सैकड़ों मनुष्यों की अन्त्येष्टि करने आ रहे

हो क्या ? और क्या—यही तो सब कहेंगे। न मालूम, अब तक मुंडाला में क्या हो गया होगा। और—कुछ भी न हुआ हो तो भी वह क्या मुँह लेकर जाएगा। लोगों से क्या वह यह कहने का साहस करेगा कि उसने देश के एक शत्रु की रक्षा की है ? साहस तो कर भी सकता है वह—उसे अपने कर्म के लिए कोई खेद नहीं, बल्कि हर्ष ही है, पर उस कर्म को जान कर मुंडाला के जन अब उस पर विश्वास कर सकेंगे क्या ? क्या अब उसे मुंडाला की जनता की, उस बहुशत मनुष्यता की, सेवा करने का अवसर दिया जा सकेगा ? सचमुच अब वह वहाँ क्या मुँह लेकर जाए।

परन्तु वह जा रहा है और जा रहा है...

गाँव के सिरे पर पहुँचते-पहुँचते, पेड़ों के झुरमुट में से रामभुवन को अपने गाँव के मकानों और झोपड़ियों की कोई-कोई चोटियाँ दिखाई देने लगीं। रामभुवन के हृदय में धड़कन शुरू हो गई। अब ज़रा देर में वह गाँव में पहुँच ही जाएगा। क्या समाचार सुनने को उसे मिलेंगे ? क्या तिरस्कार उसका सत्कार बनेगा। अपने तिरस्कार की चिन्ता क्यों है ? मनुष्यता के लिए जीवन से खेल करने-वाला व्यक्ति क्या आदर और तिरस्कार के भावों से विचलित होगा ? नहीं होगा। साहस करके चला ही चलेगा रामभुवन।

गाँव की सीमा में भी प्रवेश कर लिया अब तो उसने, सीना फुलाकर और तिरस्कार के बदले में नम्र भाव से अपने पूरे

प्राण दे डालने का दृढ़ निश्चय करके। वृक्षों की पंक्तियाँ कुछ-कुछ घनी थीं और उनके हरे-हरे पत्ते एक दूसरे से कुछ इशारा कर रहे थे। पक्षी भी कोई-कोई इधर-उधर उड़ लेते थे। वहीं कहीं रामभुवन को बेला भी देखाई दे गई, जैसे बड़ी बहकी सी हो। उसके पाँचों शिशु भी उसके साथ बहक रहे थे और वे रामभुवन को कुछ कृश से मालूम हुए। रामभुवन गाड़ी रोक कर उतर पड़ा। छहों पशु उससे आकर लिपटने लगे और उसने क्षण भर उनसे प्यार किया। फिर उन्हें भी अपने साथ गाड़ी में बिठा लिया और आगे बढ़ा। उसे लासा के तट पर अपने बैठने के स्थान का भी स्मरण हुआ जहाँ वह प्रायः अपनी भावुक, दार्शनिक चिन्ताएँ किया करता और बेला, तथा बाद में उसके परिवार, के साथ खेला करता। उसने कल्पना में सोचा कि उस तरंगिणी उन्मादिनी की भी शायद अब वह शोभा नहीं रही होगी, क्योंकि बेला तक उसको छोड़ आई है। और रामो, बिन्दो आदि ? हाँ हाँ, वह भी...और उसका अपना मकान ? नहीं, इस एक सप्ताह अपने मकान का तो उसे ध्यान तक नहीं हुआ।

कुछ और आगे बढ़ कर, मुख्य बस्ती से अभी ज़रा दूर ही, उसे वही अपाहिज वृद्ध मिला जो उससे "भैया, राम राम" किया करता था। वह एक पेड़ के नीचे, जड़ के ऊपर, अपने हाथ पर सिर को नीचा किए बैठा था। रामभुवन ने उसका संबोधन किया। घबड़ाए हुए भाव से उसने ऊपर को देखा और फिर

सिर झुका लिया। रामभुवन आतुर हो गया और उतर कर उसके पास आ गया।

रामभुवन ने अपनी ही ओर से बात चलाने का आग्रह दिखाया। वृद्ध ने किसी प्रकार मुंह खोलने की प्रवृत्ति बना कर कहा, "गाँव का हाल पूछने से तुम्हें क्या मिलेगा? तुम तो गाँव को छोड़ ही गए। गाँव की फिकर होती तो एक अठवाड़े तक नहीं बैठे रहते ऐसे।"

गाँव में रामभुवन के सब काका और दादा ही थे। उसने कहा, "ऐसे क्यों कहते हो, दादा। तुम्हें नहीं मालूम है कि..." कहते-कहते वह रुक गया। बहाना करना उसने सीखा ही नहीं था और बात कहने में उसे कमजोरी मालूम होती थी। एक क्षण वह चुप रहा और बोला, "मैं जानता था कि मुझ से गाँव नाराज़ होगा और मेरा विश्वास नहीं करेगा। पर मैं सचमुच मजबूर था और बराबर गाँव की चिन्ता से चिन्तित था, दादा।"

"गाँव की चिन्ता थी तो जरा-सा और सबर कर लो। कल को सब हाल अपने आप देख लेना।"

रामभुवन समाचार के पूर्वाभास से घबड़ा उठा और कुछ खीज तथा उतावलेपन से बोला, "तो बतलाते क्यों नहीं हो? तुम्हीं बतला दोगे तो क्या हो जाएगा। शायद कल से पहले कुछ उपाय हो सके।"

"उपाय हो सकेगा। रामभौन, उपाय सिखाने-सिखाने में

तुमने गाँव के जवानों को उभारा। उसी का तो यह सब फल है। अब और क्या उपाय करना चाहते हो ?"

"अरे तो कुछ भी नहीं बताओगे क्या ? मेरे सिखाने का फल है ! तुमने तो मुझ से कभी ऐसी बातें कीं नहीं । अच्छा तो, यह तो बतलाओ, तुम यहाँ गाँव के दूसरे सिरे पर जंगल में क्यों बैठे हो ?"

"जान तो सभी को प्यारी होती है। गाँव से बस अपनी एक गठरी लेकर भाग रहा हूँ। अपाज हूँ इससे चला नहीं जाता।"

रामभुवन के लिए अपने हृदय की धड़कन को दबाना कठिन हो गया। एक बार सोचा कि इस बुड्ढे को छोड़ कर गाँव में चला जाऊँ, फिर सब हाल मालूम हो ही जाएगा। पर उसके मन में इतनी घबड़ाहट थी कि गाँव में जाने तक की देर को वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। और फिर गाँव वालों ने भी यदि बुड्ढे की तरह ही जवाब दिया तो ? एक क्षण की उत्तेजना में वह कहने को भी हुआ—"तो दादा, मैं तुम्हे भागने नहीं दूँगा और अपने साथ पकड़ कर गाँव में ले चलूँगा।" पर वह उत्तेजित बहुत कम होता था। और फिर इस समय.....

जैसे-तैसे वृद्ध ने अपने व्यवहार की रुखाई दूर की।... जिस किसी ने भी ऐसा किया था उसे वैसा नहीं करना चाहिए था। वह कोई रामभुवन का सिखाया हुआ छोकरा ही होगा। दो रोज से गाँव के उत्तर की ओर छावनी पड़ी हुई है। कल से उनकी कार्रवाइयाँ शुरू हुई हैं। अब की ये लोग न किसी को मारते हैं,

न पीटते हैं, न शोर मचाते हैं। चुपचाप रात में मौक़ा देख कर एक-एक तरफ से घरों में घुस आते हैं और घर के आदमियों का मुंह बन्द कर उनके हाथ-पाँव बाँध कर पकड़ ले जाते हैं और घर का माल-असबाब लूट लेते हैं। पिछली रात में उन्होंने ऐसा ही किया और आज सुबह उनके दल का एक आदमी गाँव के बाहर मरा हुआ पड़ा पाया गया। आज दोपहर में सौ आदमियों का एक दल गाँव में घूम कर डौंडी पीट गया कि जिस किसी ने उनके आदमी की हत्या की है वह जाकर शाम तक अपने को उनके हाथों में सौंप दे, नहीं तो रात में वे सारे गाँव में आग लगा देंगे। बुड्ढे ने कहा, रामभौन, यह सब तुम्हारी ही करतूत है। तुमने ही गाँव के छोकरों को भड़काया था। उन्हीं में से किसी ने यह किया है। अब कल को गाँव की राख अपनी आँखों से देख लेना। हो राम! हो राम!"

रामभुवन का सिर घूम गया और उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। उसने वृद्ध की अन्तिम उक्ति नहीं सुनी। वह यह भी नहीं सोच पा रहा था कि सचमुच क्या यह सब उसी का अपराध है अथवा यह कोई दैवी घटना है।

कुछ देर बाद अपने होश में आकर उसने वृद्ध से कहा, "दादा, तुम से चला नहीं जाता, इससे तुम मेरी गाड़ी लेकर जहाँ जाना चाहते हो चले जाओ। भगवान तुम्हारी रक्षा करेंगे। मैं गाँव में जाता हूँ।"

वृद्ध को अपने सामने-ही गाड़ी पर रवाना करा कर रामभुवन

उसी जड़ पर आकर बैठ गया जहाँ अभी तक वह वृद्ध बैठा था। वहाँ बैठा-बैठा वह दूर से गृह-राजियों को देखने लगा। वह अब क्या करे? जाकर फिर तत्काल युवकों को संगठित करे और युद्ध के लिए तैयार हो जावे? क्या वे सुनेंगे? और वृद्धों तथा स्त्रियों से क्या कहेगा वह? अगर युवकों ने उसकी सुनी भी तो क्या दो चार घंटे में काफ़ी संगठन हो सकेगा? और यदि, जैसा कि आक्रामकों ने घोषित किया है, उन्होंने गाँव में आग लगाने से ही अपना कार्य आरम्भ किया तो क्या उसका संगठन उस आग से भी लड़ सकेगा? रामभुवन जानता है कि गाँव के वर्तमान संकट में उसका कोई अपराध नहीं है। वह उसके लिए जरा भी उत्तरदायी नहीं है। अब तक उसने कोई ऐसा काम नहीं किया जिसके लिए उसका अन्तःकरण उसकी चुटकियाँ ले सके। पर नहीं, इस तमाम पर विचार करना उसका लक्ष्य नहीं। उसके सामने संसार का एक मात्र तथ्य, मुंडाला की रक्षा का महत् प्रश्न है। मुंडाला की रक्षा कैसे हो?

'तुम उसको इतना प्यार करो कि उसके लिए अपने प्राण तक दे सको।' रामभुवन सोचता है—प्राण दे देने का भी तो अवसर कहाँ है। गाँव के लिए लड़ते-लड़ते मर जाने में वह कितना सुखी होगा। पर उससे गाँव की रक्षा भी तो हो सके। अगर गाँव में आग ही लगा दी जाती है तो क्या वह मर कर भी कुछ कर सकेगा? और फिर उसकी रामो, बिन्दो, चन्दो, नन्दो-उंह, मुंडाला की शत-शत मानवता का संहार कौन रोकेगा?

उस दृश्य को न देखने के लिए पहले से मर जाना भी तो कायरता है।

तब.....रामभुवन देर तक सोचता है और सूर्यदेव उसका साथ छोड़ने की धमकी देने लगे हैं। रामभुवन अपनी उधेड़बुन में ही धीरे-धीरे उठा और गाँव की ओर भटकने लगा उसका प्रयत्न था कि गाँववाले उसे न देख सकें। जहाँ किसी के द्वारा देखे जाने की आशंका होती वह चुपचाप नीचे को मुँह करके बिना देखे-सुने या बोले ही आगे बढ़ जाने की चेष्टा करता।

❀ ❀ ❀ ❀

मुंडाला में आग नहीं लगी। लोग रात भर बेचैनी से जाग कर दिन निकलने पर जब भगवान् को धन्यवाद देते हुए कुछ इधर-उधर डोले और उन्होंने सूर्यनारायण का दर्शन करने के लिए मुँह उठाया तो वे भौचक् रह गए। सीमा के पास लगे हुए एक सूखे वृक्ष पर एक नरदेह लटक रहा था। उसे फाँसी दी गई थी। सब ने उस देह को पहचाना और दाँतों में उँगली दबा कर एक दूसरे की ओर देखा।

एक वृद्ध ने मुँह का ताला खोलते हुए कहा, "तो यह इसी का काम था। देखने और कहने में ऐसा और करनी में ऐसा!"

एक युवक ने प्रतिवाद किया, "तुम समझते ही नहीं तो बोलते क्यों हो? करनी में कैसा? उसने वैसा किया तो उसने ही ऐसा भी किया। नहीं तो तुम इस समय यह कहने को बैठे न रहते।"

फिर एक वृद्ध बोला, "झूठ है। जो वैसा करता है वह ऐसा कर ही नहीं सकता। कहीं धोखे से हाथों में पड़ गया होगा।"

लुटेरों का दल कुछ रोज़ लूट-पाट करके लौट गया। शायद उनके सरदार पर भी इस घटना का कुछ प्रभाव पड़ा हो। उसने आग लगाने की आज्ञा नहीं दी। उनके कार्यों की कल्पना से भयभीत होकर बहुत से लोग गाँव छोड़ कर भाग गए थे। उनके वापिस लौट जाने के कुछ समय बाद गाँववाले भी अपने-अपने घरों में आकर बस गए।

और फिर वर्षों तक गाँव के बचे हुए लोग आपस में टिप्पणियाँ करते रहे। चार बुराई करनेवाले थे तो एक-दो प्रशंसा भी करते थे। पर चौधरी हरपिरभू कोई राय न देता था। वह, जो हमेशा गाँव का बाप रहा और प्रत्येक विषय पर हरेक को हर समय सलाह-उपदेश देने को तत्पर रहता, अब सहसा इतना बुड्ढा हो गया था कि उसका उर्वर मस्तिष्क सोचने समझने में असमर्थ था।

और तब बीस-पचीस वर्ष बाद, जब मुंडाला में खूब अमन-चैन था, और लोग हरे-भरे थे, एक परलोक-यात्रा को तत्पर व्यक्ति के आत्म-प्रकाशन ने सब भेद खोल दिया। अपने पाप का कम-से-कम इस रूप में प्रायश्चित्त किए बिना उसकी आत्मा सुख-शान्ति से नहीं जा सकती थी।

तब गाँववालों ने फिर दाँतों-तले उँगली दबाई और सूखे पेड़ के स्थान पर एक स्मारक बनवाया। उस स्मारक के ऊपर मोटे-

मोटे अक्षरों में बहुत समय तक लोग पढ़ते रहे—उसने गाँव की रक्षा के लिए दूसरे के अपराध का दंड अपने ऊपर लिया। उससे बढ़ कर प्रेम किसका हो सकता है। ❀

❀ एक अँग्रेज़ी प्लॉट के आधार पर लिखित स्वतन्त्र कहानी।

नवजीवन

ईसा के सन् १७९९वें वर्ष में मेरा एक सम्बन्धी लँगड़ाता हुआ चैथम नगर में आया। वह बेचारा इस समय एक-एक कौड़ी को मोहताज, एक दरिद्र यात्री था। वह इसी कमरे में आकर आग के सामने बैठ गया और थोड़ी देर बाद यहीं एक टूटी चारपाई पर सो रहा।

उसका इस चैथम नगर में आने का एक मुख्य अभिप्राय था। वह किसी अश्वारोही सेना में, अथवा यदि यह सम्भव न हो तो किसी दारोग़ा या दफ़ादार से महाराज जार्ज की मोहर का एक शिलिंग लेकर* किसी पैदल सेना में ही, भरती हो जाना चाहता था। उसकी मरने की इच्छा थी। और, उसने सोचा कि पैदल चलने का कष्ट उठा कर गोली खाने की अपेक्षा घोड़े पर चढ़कर मरना ही अधिक अच्छा है।

उसके जन्मकाल का नाम रिचर्ड था, परन्तु वह डिक के ही नाम से अधिक प्रसिद्ध था। चैथम आते समय उसने अपने इस पुराने उपनाम को मार्ग में बदल कर उसके स्थान में डबलडिक रख लिया। आजकल वह रिचर्ड डबलडिक के ही नाम से सुपरिचित

* इस समय युद्ध की प्रबलता तथा सैनिकों की अधिक आवश्यकता के कारण एक शिलिंग का लोभ दिखा कर लोग पैदल सेना में भरती किए जाते थे। एक शिलिंग भरती होने का इनाम था।

था। उसकी आयु बाईस वर्ष की थी और वह पाँच फुट दस इंच का एक लम्बा-तड़ंगा युवक था। उसका जन्म एक्समाउथ में हुआ था, परन्तु अपने जीवन भर वह कभी उस स्थान के निकट भी नहीं गया। दुर्भाग्य से जिस समय एक फटा-सा जूता पहने अपने धूलिधूसरित पैरों को घसीटता हुआ वह चैथम में आया, उस समय यहाँ एक भी अश्वारोही सेना न थी। निदान, वह पैदल सेना में ही भरती हो गया और शराब पी-पी कर मस्त रहने लगा। अपनी नौकरी के काम को वह बिलकुल भूल-सा गया।

इस प्रकार मेरा सम्बन्धी बुरे पथ में प्रवृत्त हो कर बड़ा अस्थिर और अनियंत्रित पशु-जीवन व्यतीत करने लगा। बात यह नहीं थी कि उसका हृदय अच्छे विचारों से शून्य था। उसकी सहज वृत्तियों का झुकाव उचित मार्ग ही की तरफ़ था परन्तु उन पर एक प्रकार की छाप-सी लग गई थी। एक सुदर्शना युवती से उसका विवाह निश्चित हुआ था। उसको यह इतना प्रेम करता था कि न तो उसे और न स्वयं इसे ही इस प्रेम का विश्वास होता था। परन्तु किसी बुरी घड़ी में कोई ऐसी घटना हो गई थी जिसके कारण युवती ने गम्भीर वाणी में उससे कह दिया था "रिचर्ड, मैं कभी किसी दूसरे मनुष्य से विवाह नहीं करूँगी। तुम्हारे लिए मैं सदा कुमारी रहूँगी। परन्तु मैरी मार्शल के मुख से तुम इस पृथ्वी पर अब कोई बात न सुन सकोगे। जाओ रिचर्ड, ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे।"

युवती का नाम मैरी मार्शल था। उसकी बात ने युवक की

आशाओं का अन्त कर दिया। रिचर्ड डबलडिक जीवन से ऊब कर गोली खाने की इच्छा से चैथम में आया।

सन् १७९९ में रिचर्ड डबलडिक से अधिक भ्रष्टशील और प्रमत्त मनुष्य चैथम के बारकों भर में कोई नहीं था। तमाम पलटनों के सब से निकृष्ट मनुष्यों के साथ उसका संसर्ग रहता था। कदाचित् ही वह कभी गंभीर और अप्रमत्त दिखाई देता। सदैव उसे अपनी असावधानता के लिए दण्ड मिलता था। तमाम बारक-वाले यह समझ गए थे कि बहुत शीघ्र ही रिचर्ड डबलडिक को कोड़े खाने पड़ेंगे।

रिचर्ड डबलडिक के दल के कप्तान एक युवा सज्जन थे जो आयु में उससे लगभग पाँच वर्ष बड़े थे। उनके हँसते हुए नेत्र चमकीले, सुन्दर और काले थे। कप्तान के गम्भीर होने पर उनमें कठोरता नहीं होती थी, प्रत्युत एक प्रकार का धीर और स्थिर भाव उनमें आजाता था। इन नेत्रों की दृष्टि में डबलडिक के लिए विचित्र प्रभाव था। उसके संकुचित हुए संसार में यही दो ऐसे नेत्र थे जिनका सामना करने की उसमें शक्ति नहीं थी।

अपनी अकीर्ति और दण्ड पर डबलडिक लज्जित नहीं होता था। प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक मनुष्य उसके औद्धत्य और अवज्ञा का विषय था। परन्तु उसे यह मालूम होने-भर की देर थी कि क्षण भर के लिए कप्तान की दृष्टि मुझ पर पड़ी, और वह लज्जा से दब जाता था। कप्तान के देखने की सम्भावनामात्र से वह विगर्हित और विचलित हो उठता। बुरी से बुरी आपत्ति के समय भी वह

उन दो चमकीले, सुन्दर तथा काले नेत्रों को देख कर रास्ता कतरा जाता तथा कहीं और निकल जाता।

एक दिन जब वह पिछले अड़तालीस घंटे की कैद के उपरांत कालकोठरी से निकला, जिसमें पहले भी वह अपना बहुत-सा समय एकान्तवास में व्यतीत कर चुका था, उसे कप्तान टांटन के निवेश में उपस्थित होने की आज्ञा मिली। कालकोठरी से निकले हुए मनुष्य की मलिन और गिरी दशा में कप्तान के सामने पड़ने की उसकी इच्छा नहीं होती थी, परन्तु अभी वह इतना उद्धत नहीं हो गया था कि आज्ञा का उल्लंघन कर सके। अतएव अपने हाथ में फूस का एक तिनका मरोड़ता-मसलता डबलडिक उसी दशा में कप्तान के निवास में पहुँचा।

जैसे ही द्वार पर पहुँच कर उसने अपनी मुट्ठी से धप्-धप् किया वैसे ही कप्तान ने उसे भीतर बुला लिया। रिचर्ड डबलडिक अपनी टोपी उतार कर पैर बढ़ा कमरे में प्रविष्ट हुआ। उसे अच्छी तरह मालूम होने लगा कि मैं उन्हीं काले चमकीले नेत्रों के सामने खड़ा हूँ।

थोड़ी देर निस्तब्धता रही। डबलडिक ने अपने हाथ का तिनका मुँह में रख लिया। जिव्हा की सहायता से हलक में पहुँच कर तिनका उसका श्वासावरोध करने लगा।

कप्तान ने कहा, "डबलडिक, तुम जानते हो कि तुम किधर जा रहे हो?"

काँपती आवाज़ में उत्तर मिला, "हाँ हुज़ूर, शैतान के पास।"

"बेशक, और बड़ी शीघ्रता से।"

रिचर्ड डबलडिक ने तिनके को अपने मुँह में घुमा कर दुःखित भाव से सहमतिसूचक सलाम किया।

कप्तान ने कहना आरंभ किया, "सुनो डबलडिक। जब से, सत्रह वर्ष की अवस्था में, मैंने महाराज की नौकरी की है तब से अब तक मुझे कितने ही ऐसे मनुष्यों को, जिनसे भविष्य में बड़ी आशा हो सकती थी, तुम्हारे पथ पर जाते देखकर बड़ा दुःख हुआ है। तुम्हारी ही भांति गर्ह्य जीवन व्यतीत करने के लिए दृढसंकल्प अनेक मनुष्य मेरे दृष्टिमार्ग में आए हैं। परन्तु किसी को भी देखकर मैं इतना दुःखी नहीं हुआ जितना आरंभ से ही तुम्हें देखकर हुआ हूँ।"

रिचर्ड भूमि की ओर देख रहा था। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे फ़र्श के ऊपर एक जाल-सा पुरता जा रहा है। साथ ही उसे यह भी दिखाई दिया कि कप्तान की प्रातःभोज की मेज़ की टांगें टेढ़ी होती जा रही हैं, मानो वे पानी में रक्खी हुई हों।

उसने उत्तर दिया, "मैं एक बहुत साधारण सैनिक हूँ। मुझ-जैसे क्षुद्र पशु का कैसा परिणाम होगा, इस प्रश्न का कुछ भी महत्व नहीं है।"

ईषत्क्रोधमिश्रित गम्भीरता से कप्तान ने कहा, "तुम एक शिक्षित मनुष्य हो। औरों की अपेक्षा तुम्हारे लिए उन्नति के

अधिक अवसर हैं। यदि जो तुम कहते हो वही तुम्हारा अभिप्राय है तो जितना मैं समझता था उससे कहीं अधिक तुम्हारा पतन हो चुका है। यह पतन कितना अधिक हुआ है इसका निर्णय तुम्हारे निन्दनीय जीवन की बातों को देखता और समझता हुआ मैं तुम्हारे ही ऊपर छोड़ता हूँ।"

डबलडिक ने उत्तर दिया, "मैं बहुत ही शीघ्र गोली से मारे जाने की आशा करता हूँ। और तब आपकी पलटन और यह दुनिया दोनों ही मुझ से मुक्त हो जाएँगी।"

मेज की टांगें और भी टेढ़ी होती जा रही थीं। अपनी दृष्टि को स्थिर करने के लिए डबलडिक ने ऊपर को देखा और उसकी कमान से चार आँखें हुई। लज्जा से उसने अपना हाथ नेत्रों पर रख लिया। आत्मापमान के कारण उसका हृदय फटा-सा पड़ता था।

"हाँ, डबलडिक। तुममें मैं यही भाव देखना चाहता हूँ। इसके बदले यदि कोई यहाँ आकर मेरी माता की भेंट के लिए पाँच हज़ार गिन्नी यहाँ रख जाए तो मुझे पसन्द नहीं। क्या तुम्हारी माता है, डबलडिक?"

"ईश्वर का धन्यवाद है कि वह अब जीवित नहीं है।"

"यदि तुम्हारी कीर्ति हरेक के मुँह पर होती, समस्त पलटन में, देश में यदि उसका गान होता तो तुम्हारी इच्छा होती कि तुम्हारी माता यह कहने के लिए जीवित होतीं कि यही तो मेरा बेटा है।"

" क्षमा कीजिए, कप्तान साहब। वह कभी मेरे विषय में कोई अच्छी बात नहीं सुन सकती थीं। उन्हें कभी गर्व से और आनन्द से अपने को मेरी माता बताने का अवसर नहीं मिलता। प्रेम और दया तो उनकी मुझ पर होती ही, परन्तु यह नहीं कि..... क्षमा कीजिए हुजूर! मैं एक नष्टसर्वस्व अभागा हूँ, बिलकुल, बिलकुल...आपकी शरण में... " और डबलडिक ने दीन भाव से हाथ फैलाते हुए अपना मुख दीवार की तरफ़ फेर लिया।

कप्तान ने कहा, " मेरे मित्र... "

" ईश्वर आपका भला करे, " रिचर्ड डबलडिक ने रोते हुए कहा।

" यह तुम्हारे जीवन का बड़े संकट का समय है। थोड़े दिन तुमने अपने चलन को और इसी प्रकार रक्खा कि तुम गए। मतु, शायद ठीक कल्पना न कर सको परन्तु मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि इतना हो जाने पर फिर तुम्हारा कहीं पता नहीं रहेगा। कोई भी मनुष्य जो तुम्हारी तरह आत्मग्लानि से रो सकता है उन दंडचिन्हों को नहीं सह सकता जो तुम्हारे शरीर पर हैं। "

काँपते हुए धीमे स्वर में डबलडिक ने कहा, " इसे मैं अच्छी तरह समझता हूँ, हुजूर। "

" परन्तु किसी दशा में भी हो, मनुष्य अपना कर्तव्य कर सकता है। ऐसा करने पर, दूसरे चाहे उसके परम दुर्भाग्य से उसकी प्रतिष्ठा न करें, पर वह आत्मसम्मान अवश्य प्राप्त कर सकता

है। एक साधारण सैनिक को भी—एक क्षुद्र पशु को भी जैसा कि तुमने उसे अभी कहा है—इस विपन्न समय में बड़े अवसर प्राप्त हैं, यदि केवल वह कुछ सहानुभूतिशील साक्षियों के सम्मुख सदा अपना कर्तव्य पालन करता रहे। क्या तुम्हें सन्देह है कि ऐसा करने से तमाम रेजिमेन्ट, तमाम सैन्य-समूह, तमाम देश उसका यश नहीं गाने लगेगा? सँभलो डबलडिक, जब तक समय है सँभलो, और प्रयत्न करो।"

डबलडिक ने भग्न हृदय से उत्तर दिया, "करूँगा! करूँगा! मुझे केवल एक साक्षी चाहिए"

"मैं तुम्हारा आशय समझ गया। जाओ, मैं तुम्हारा सावधान और सच्चा साक्षी रहूँगा।"

डबलडिक घुटनों के बल बैठ गया। उसने कप्तान के हाथ को चूमा। वह उठा और एक बिलकुल बदला हुआ मनुष्य बनकर बाहर निकला।

[२]

उस वर्ष, सन् १७९९ में, फ़रांसीसियों ने मिस्र में, इटली में, जर्मनी में, सर्वत्र ही अपना आधिपत्य कर रक्खा था। नैपोलियन बोनापार्ट ने भारतवर्ष में भी आक्रमण करने की तैयारी कर ली थी और बहुत-से मनुष्य आनेवाली कठिनाइयों के लक्षण देखने लगे थे। इसके अगले ही वर्ष जब अंग्रेजों ने आस्ट्रिया के साथ उसके विरुद्ध मित्रता की तो कप्तान टांटन की पलटन भारतवर्ष में

थी और उसमें कारपोरल रिचर्ड डबलडिक से अच्छा काम करने-वाला और कोई 'नॉन-कमिशन्ड ऑफ़िसर' नहीं था।

सन् १८०१ में भारतीय सेना मिस्र के तट पर थी। अगले वर्ष अल्पकालिक सन्धि की घोषणा होनेवाली थी और समस्त सेनाएँ वापिस बुला ली गई थीं। सहस्रों मनुष्यों को इस समय यह बात मालूम थी कि सेना में जहाँ कहीं कप्तान टांटन जाते थे वहीं, उनके पार्श्व में, चट्टान के समान दृढ़, सूर्य के समान सच्चा और कार्तिकेय के समान पराक्रमी प्रसिद्ध योद्धा सार्जेन्ट रिचर्ड डबलडिक भी उपस्थित रहता था।

सन् १८०५ ट्रैफ़ेलगर के युद्ध के लिए तो प्रसिद्ध है ही, परन्तु इस वर्ष भारतवर्ष में भी बड़ी लड़ाई रही। हमारे सार्जेन्ट मेजर ने भी इस बार बड़े-बड़े काम किए। एक बार ध्वजावाहक के हृदय में गोली मारकर शत्रु झंडा छीन ले गए। डबलडिक ने अकेले ही अति सघन विपक्षिदल में प्रवेश कर उसे मुक्त किया। ऐसे ही एक बार और उसने स्वयं ही घोड़ों की टापों और चम-चमाती हुई तलवारों के बीच में घुसकर अपने क्षतविक्षत कप्तान की रक्षा की थी। इन साहस के कर्मों का उसे पुरस्कार भी मिला। सार्जेन्ट रिचर्ड डबलडिक अब एन्साइन रिचर्ड डबलडिक हो गया था।

पताका मुक्त करने की बात सर्वत्र फैल गई। लोग उत्साह से उत्तेजित हो कप्तान टांटन की पलटन में भर्ती होने की इच्छा करने लगे। इस प्रकार सैकड़ों युद्धों में हानि सहती परन्तु शीघ्र ही बड़े-

बड़े वीर योद्धाओं की सहायता पाकर विजयलाभ करती हुई यह पलटन सन् १८१२ की बेडजाज़ की लड़ाई में सम्मिलित हुई। प्रत्येक अवसर पर ब्रिटिश सेना में उसका उत्साह बढ़ाया जाता था और उसके असामान्य पराक्रम की बात सुनकर लोगों की आँखों में आँसू आ जाते थे। समस्त सेनाओं में बड़े-बड़े अफ़सरों से लेकर ढोल पीटनेवाले लड़के तक कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं था जो इस जनकथा को न जानता हो कि जहाँ कहीं भी दो मित्र—काले चमकीले नेत्रोंवाले मेजर टांटन और उनका अनुरक्त एन्साइन रिचर्ड डबलडिक—जाते वहीं अंग्रेज़ी सैन्य के शूर-से-शूर योद्धा भी उनका अनुसरण करने के लिए उन्मत्त से हो पड़ते।

बैडबाज़ की ही एक घटना है। कोई भीषण युद्ध नहीं हो रहा था। अंग्रेज़ी सैनिक खाइयों में काम कर रहे थे कि सहसा अवरुद्ध फ़रांसीसियों ने उनपर गोली बरसानी आरम्भ कर दी। दोनों अफ़सर—मेजर और एन्साइन—उन्हें रोकने में प्रयत्नशील हुए और क्षण भर के लिए डबलडिक की दृष्टि अपने सैनिकों को उत्साहित करते हुए उनके साहसी अफ़सर पर जा पड़ी। परन्तु उसने उसे देख अच्छी तरह लिया। उसने देखा कि तलवार घुमा घुमाकर अफ़सर अपनी सेना को एकत्रित होने का आदेश कर रहा है। इसी समय उन लोगों ने उसके इशारे की आज्ञा पालन करते हुए गोलियाँ दागीं और मेजर टांटन पृथ्वी पर गिर पड़े।

दस मिनट में गोलियाँ बन्द हुईं और डबलडिक उस स्थान पर आया जहाँ उसका सबसे अच्छा मित्र पड़ा हुआ था। मेजर की

वर्दी वक्षस्थल के ऊपर से हटाई गई। उनकी कमीज़ पर रक्त की तीन छोटी-छोटी बूंदें पड़ी हुई दिखाई दी।

उन्होंने कहा, "भाई डबलडिक, मैं मर रहा हूँ।"

उनके बराबर में झुक कर अपना हाथ उनकी गर्दन के नीचे लगाते हुए डबलडिक ने कहा, "ईश्वर के लिए ऐसा मत कहो टांटन। मेरे उद्धारक, मेरे रक्षक देवदूत, मेरे साक्षी टांटन—ईश्वर के लिए ऐसा नहीं—! मनुष्यों में कोई भी तुम्हारे समान दयाशील और शुद्धात्मा नहीं है।"

काले चमकीले नेत्र हँसे—नेत्र जो इस समय पीले रक्तहीन चेहरे के संयोग से और भी काले और चमकीले हो गए थे। उद्धारक का हाथ जिसे डबलडिक ने तेरह वर्ष पहले कातर भाव से चूमा था, उसके हृदय पर जा पड़ा। मेजर ने कहा, "मेरी माता को लिख देना। उनसे कहना कि हम लोग किस प्रकार मित्र हुए। इस बात से उन्हें वैसी ही तसल्ली मिलेगी जैसी कि मुझे मिल रही है। डबलडिक तुम्हारा फिर घरबार होगा।"

इसके बाद टांटन नहीं बोले। उन्होंने धीरे-से अपने हवा में लहलहाते हुए बालों की तरफ़ इशारा किया। एन्साइन उनका आशय समझ गया। यह देखकर एक बार फिर उनके होठों पर मधुर मुस्कराहट दौड़ आई और अपने सिर को डबलडिक के हाथ पर, मानों अनन्त विश्राम के लिए, रख कर तथा अपना हाथ उस मनुष्य के हृदय पर धरे हुए जिसमें उन्होंने एक जीवन का संचार कर दिया था, टांटन चल बसे।

कोई भी मनुष्य उस शोक के दिन डबलडिक को देखकर अपने आँसू नहीं रोक सका। रणभूमि में ही अपने मित्र की समाधि बना कर वह अब अनाथ और अकेला रह गया। अपने कर्तव्य के अतिरिक्त उसके लिए अब केवल दो चिन्ताएँ रह गई थीं—प्रथम तो, उनकी माता को देने के लिए उनके केश-गुच्छ को सुरक्षित रखना, और द्वितीय, उस फ़राँसीसी अफ़सर के साथ युद्ध करना जिसके उत्साह दिलाने से सैनिकों के गोली चलाने पर टांटन की मृत्यु हुई थी। लोगों में अब एक नई किम्वदन्ती फैल-गई कि जिस समय भी डबलडिक और फ़राँसीसी अफ़सर एक दूसरे के सामने पड़ेंगे उसी समय फ्राँस में रोना मच जाएगा।

युद्ध चलता रहा। डबलडिक के हृदय से फ़राँसीसी अफ़सर की छवि दूर नहीं हुई। अफ़सर भी युद्ध में ही था, परन्तु दोनों एक दूसरे के सामने नहीं आ सके। किन्तु लड़ाई समाप्त होने पर लूट के माल के साथ ये शब्द चारों ओर बड़े ज़ोर से फैल गए कि लफ़्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक के गहरी चोट आई है, परन्तु कोई अन्देशा नहीं है।

[३]

सन् १८१४ का ग्रीष्म आया। सैंतीस वर्ष का रुग्ण डबलडिक अपने हृदय के पास टांटन के बालों को रखकर इंगलैन्ड पहुँचा। उस रोज़ से कितने ही फ़राँसीसी अफ़सर उसने देखे थे। कितनी ही भयानक रात्रियों में उसने अपने मनुष्यों सहित लालटैनें लेकर

रणभूमि में अपने ज़ख़्मियों को देखते समय अनेक दुर्बलीभत क्षत फ़राँसीसियों की रक्षा की थी। परन्तु मानसिक चित्र के साथ चित्रित का कभी संयोग नहीं हुआ।

यद्यपि डबलडिक कमज़ोर और पीड़ित था तथापि उसने फ्रोम पहुँचने में, जहाँ टांटन की माता रहती थी, एक घंटे की भी देर नहीं की। उन मधुर और करुणाभरे शब्दों में जो आज स्वतः ही याद आते हैं 'वह उसका इकलौता बेटा था और माता बेचारी विधवा थी।'

रविवार का सायंकाल था। महिला चुपचाप अपने बाग़ की खिड़की के पास बैठी हुई इंजील पढ़ रही थी। वह धीरे-धीरे काँपती हुई आवाज़ में उसमें लिखा हुआ यह वाक्य दुहरा रही थी, "युवा पुरुष, मैं तुझ से कहता हूँ, उठ।"

डबलडिक का खिड़की के नीचे हो कर जाना पड़ा और उसे मालूम हुआ जैसे वही काले चमकीले नेत्र उसकी तरफ़ देख रहे हैं। देखते ही स्त्री के हृदय ने बता दिया कि यह कौन है। झटपट कर वह द्वार पर आई और उसके गले से लिपट गई।

डबलडिक ने कहा, "उन्होंने ही मुझे विनाश से बचाया, मुझे आदमी बनाया और मेरी कलङ्क और अपयश से रक्षा की। हे ईश्वर, उनकी आत्मा को सदा शान्ति देना। जो उसे करना होता है वही वह करता है।"

---

† यह शब्द इंजील के हैं।

महिला ने कहा, " जरूर शान्ति देगा। मैं जानती हूँ कि वह स्वर्ग में है—ओह ! मेरे लाल, मेरे हृदय के लाल। "

सेना में भरती होने के दिन से अभी तक कभी डबलडिक ने अपना सच्चा नाम, अथवा मैरी मार्शल का नाम, या अपने जीवन से सम्बन्ध रखनेवाला कोई शब्द अपने उद्धारकर्ता को छोड़ और किसी से नहीं कहा था। वह पिछली घटना एक प्रकार से उसके जीवन से लुप्त हो गई थी। लोगों से एक भांति का अज्ञात जीवन व्यतीत करना ही उसने अपना प्रायश्चित समझ रक्खा था। उसने निश्चय कर लिया था कि पुरानी बातें प्रकाशित कर अब अपनी कष्टलब्ध शान्ति को नष्ट न करूँगा। मरने के बाद लोगों को प्रकट हो जाएगा कि किस प्रकार मैंने प्रयत्न किया, कष्ट उठाए, परन्तु अपने लक्ष्य को नहीं भुलाया और उस समय यदि उन्होंने उस पर विश्वास करके मुझे क्षमा कर दिया—परन्तु इसके लिए यथेष्ट समय मिलेगा...हाँ, यथेष्ट समय मिलेगा।

परन्तु उस रात को उसे अपने उद्धारक के शब्द याद आगए—" उनसे कहना कि हम लोग किस प्रकार मित्र हुए। इससे उन्हें वैसी ही तसल्ली मिलेगी जैसी मुझे मिल रही हैं। याद आते ही उसने माता से सब बातें कह डालीं। धीरे-धीरे डबलडिक अनुभव करने लगा कि अपनी प्रौढ़ावस्था में मुझे माता मिल गई। वह भी यह समझने लगी कि पुत्र-वियोग के पश्चात् मुझे दूसरा पुत्र मिल गया। अपने इंग्लैंड-वास के समय में अपने ही घर की भाँति वह उस बाग़ में रहा जिसमें उसने एक अपरिचित

की भांति प्रवेश किया था। और जब स्वस्थ होने पर वसन्त में वह अपने रेजिमेन्ट में फिर सम्मिलित हुआ, वह यह सोचता हुआ बाग़ से निकला कि आज पहली बार मैं एक स्त्री का आशीर्वाद पाकर युद्ध में जा रहा हूँ।

[४]

पलटन, क्वाटर ब्रास और लिगनी होती हुई वाटरलू के प्रसिद्ध युद्धक्षेत्र में पहुँची। इस समय भी डबलडिक के हृदय पर फ़राँसीसी अफ़सर का चित्र अंकित था। परन्तु अभी तक एक बार भी असल व्यक्ति से उसका साक्षात्कार नहीं हुआ।

शीघ्र ही डबलडिक का प्रसिद्ध दल समर में प्रवृत्त हुआ और आज पहिली बार इतने घटनापूर्ण वर्षों के बाद उसे रुकावट का सामना करना पड़ा। डबलडिक को गोली लगी और वह गिर पड़ा। चैतन्य-संसार में लफ़्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक के नाम का कोई मनुष्य नहीं रहा। परन्तु उसकी पलटन उसका बदला लेने के लिए उन्मत्त सी हो रही थी।

रसद के ले जाने, भारी गाड़ियों के चलने, तथा घोड़ों की टापों और बड़ी-बड़ी तोपों के नीचे दबने से सड़कों का चूरा-चूरा हो गया था। जगह-जगह खाइयाँ, गड्ढे और नाले बन गए थे और मेंह के पानी से इनमें कीचड़ भर गई थी। सर्वत्र विध्वंस ही विध्वंस का दृश्य दिखाई देता था। मरे हुए तथा मरते हुए मनुष्यों के बीच में झटके खाता हुआ, रक्त तथा कीचड़

से अत्यंत विकृतांग होकर मनुष्य-सा न मालूम होता हुआ, तथा आदमियों की कराहट और घोड़ों की हिनहिनाहट से विचलित न होता हुआ लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक का, जिसकी प्रशंसाओं से इस समय सारा संसार गूँज रहा था, सजीव परन्तु संज्ञारहित तथा स्पर्शज्ञानशून्य शरीर इन्हीं दुर्गम भागों में होकर ब्रुसेल्स पहुँचाया गया।

एक-एक सप्ताह कर ग्रीष्म के लम्बे सुहावने दिन बीतने लगे। युद्ध के विध्वंस से बची हुई खेती पक गई और काटी जाकर खलिहानों में भरी जाने लगी। परन्तु डबलडिक का रुग्ण शरीर अस्पताल में पड़ा रहा। प्रतिदिन सूर्य उस जनाकीर्ण नगर में उदय होकर छिप जाता, प्रतिदिन चंद्रमा वाटरलू के क्षेत्र में प्रशान्त रात्रि के मुख पर अपनी ठंडी उज्ज्वल चाँदनी बखेरता, परन्तु डबलडिक के लिए मानो यह सब कुछ नहीं था। सेनाएँ मुदित मन से ब्रुसेल्स में होकर आती-जाती थीं। भाई-बहन भाइयों को, माता-पिता पुत्रों को तथा स्त्रियाँ अपने पतियों को देखने के लिए वहाँ आतीं और आनन्द या सन्ताप के ढेर में से अपने भाग्य का हिस्सा लेकर चली जाती थीं। दिन में बीसों बार नगर में घंटियाँ बजतीं, बीसों बार बड़े-बड़े भवनों की छाया में परिवर्तन होता, सहस्रों लालटैनें सायंकाल को नगर में प्रकाश करतीं, सहस्रों मनुष्य इधर-उधर चबूतरों पर घूमते-फिरते और कितने ही ठंडी हवा के झोंके रात में सोनेवालों को आनन्द दे जाते, परन्तु इन सब से विरक्त एक दुग्धवत् श्वेत चेहरा निश्चल

भाव से पलंग पर लेटा हुआ रहता था, मानो किसी ने लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक की समाधि पर करवट के लेटी हुई उसकी एक संगमरमर की मूर्ति बना कर स्थापित कर दी हो।

बहुत धीरे-धीरे अपने परिचित डाक्टरों तथा यौवन के सहचरों के मुखों का, और सब से अधिक अपनी परम प्रिय मैरी मार्शल के करुणाभरे और चिन्तायुक्त चेहरे का मुहूर्त-दर्शन करानेवाले एक दीर्घ समय-स्थान-व्यापी लम्बे स्वप्न से मानो उठ कर लफ्टेनेन्ट रिचर्ड डबलडिक ने फिर जीवन प्राप्त किया। बहुत दिनों के पश्चात् आज फिर शरद्ऋतु के सायंकाल के समय उसने साफ़ सुथरे खुले हुए शान्त कमरे में बैठ कर सामने के बरामदे में लास्य करते हुए वृक्षों की लहलहाती हुई पत्तियों और भीनी सुगंधवाले पुष्पों को देखा। डबलडिक ने और दृष्टि बढ़ाई और उसे दिखाई दिया स्वच्छ विमल आकाश और उस पर पड़ती हुई सूर्य की लालिमामयी किरणें। अहा! कितना शान्त और मनोहर समय था। डबलडिक ने समझा कि मैं किसी दूसरे लोक में आ पहुँचा हूँ। क्षीण स्वर में उसने कहा, "टांटन! क्या तुम मेरे पास हो?"

किसी का मुख उसकी तरफ़ झुका। यह टांटन का नहीं, उसकी माता का था।

उसने कहा, "मैं यहाँ तुम्हारी शुश्रूषा के लिए आई थी। कई सप्ताह से हम लोग तुम्हारे उपचार में लगे हुए हैं। क्या तुम्हें कुछ याद नहीं है?"

"कुछ नहीं।"

स्त्री ने उसके गाल का चुम्बन कर सान्त्वना देते हुए उसके हाथ को पकड़ लिया। डबलडिक ने पूछा, "पलटन कहाँ है? उसका क्या परिणाम हुआ? मैं तुम्हें मा कह कर पुकारूँगा...हाँ मा, उसका क्या परिणाम हुआ?"

"बड़ी भारी विजय। युद्ध समाप्त हो गया और तुम्हारी पलटन ने सब से अधिक वीरता से काम किया।" उसकी आँखें चमक उठीं, होठ हिले और सिसकते हुए उसने अपनी आँखों से आँसू टपका दिए। वह बड़ा कमज़ोर हो गया था—इतना कमज़ोर कि उसमें हाथ भी हिलाने की शक्ति नहीं थी।

उसने पूछा, "क्या अभी कुछ अँधेरा-सा हुआ था?"

उत्तर मिला, "नहीं तो।"

"शायद मुझे ही अँधेरा मालूम हुआ होगा। अभी काली छाया की तरह की कोई चीज़ इधर को गई थी। जैसे ही वह गई और सूर्य ने—आहा...सूर्य कैसा सुन्दर और सुखद मालूम होता है!...मैं क्या कहता था...और सूर्य ने अपनी किरणों से मेरे मुख का स्पर्श किया तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि एक छोटा सा सुफ़ेद बादल का टुकड़ा दरवाज़े से होकर निकल गया। क्या कोई भी बाहर नहीं निकला था?"

स्त्री ने अपना सिर हिला दिया और थोड़ी देर में डबलडिक को नींद आ गई। वह अब भी उसका हाथ पकड़े हुए कोमलता से उसे थपथपाती रहीं।

[५]

उस रोज़ से उसका स्वास्थ्य अच्छा होता गया। बहुत धीरे-धीरे उसका स्वास्थ्य लौट रहा था क्योंकि उसके सिर में बड़ी बुरी चोट आई थी और एक गोली उसके शरीर में भी लगी थी। परन्तु प्रतिदिन कुछ-न-कुछ लाभ होता जा रहा था। जब चारपाई पर लेटे-लेटे बोल सकने की यथेष्ट शक्ति उसमें आ गई तो वह प्रायः कहा करता कि माता मुझे सदा मेरे पुराने इतिहास की याद दिला देती हैं। उसे अपने रक्षक के मरते समय के शब्द याद हो आए और उसने सोचा—'इससे उन्हें तसल्ली होती है।'

एक रोज़ सोकर उठने पर वह बड़ा सुस्त था। उसने टांटन की माता से कुछ पढ़कर सुनाने के लिए कहा। परन्तु मसहरी का पर्दा, जिसे वह उसके जागने पर उठा देती थीं, आज वैसा ही पड़ा रहा और एक स्त्री का स्वर, जो उनका नहीं था, डबलडिक के कानों में पड़ा—"क्या तुम एक अपरिचित को देख सकते हो? क्या तुम एक अपरिचित को देखना चाहोगे?"

लफ़्टेनेन्ट डबलडिक को रिचर्ड डबलडिक के पुराने दिनों की याद हो आई। उसने कहा, "अपरिचित?"

"हाँ, अब अपरिचित हूँ परन्तु पहले नहीं थी। रिचर्ड! प्यारे रिचर्ड! इतने दिनों के बिछुड़े हुए रिचर्ड! मेरा नाम..."

रिचर्ड के शरीर में थरथरी होने लगी। उसने व्याकुल होकर कहा, "मैरी..."

स्त्री ने उसे अपने हाथों में पकड़ लिया और उसका सिर अपनी गोद में रख कर कहा, "नहीं रिचर्ड ! मैं उतावली में की हुई किसी प्रतिज्ञा को भंग नहीं कर रही हूँ। यह जो तुम से बोल रहे हैं मैरी मार्शल के होठ नहीं हैं। मेरा दूसरा नाम है। मैंने विवाह कर लिया है।"

"विवाह ?"

"हाँ। क्या तुम ने मेरा नया नाम नहीं सुना है ?"

"नहीं।"

"फिर सोचो रिचर्ड ! क्या तुम्हें विश्वास है कि तुमने मेरा नया नाम कभी नहीं सुना ?"

"कभी नहीं।"

"मुझे देखने के लिए अपना सिर मत हिलाओ, प्यारे रिचर्ड ! जब तक मैं अपनी कहानी कहूँ तुम उसे ऐसे ही रहने दो। मैं एक बड़े उदार और उच्चहृदय मनुष्य को प्रेम करती थी—अपने हृदय से प्रेम करती थी। भक्ति और परम श्रद्धा से वर्षों तक मैं उसे प्रेम करती रही—उस समय भी जब कि मुझे उसके लौटने की कोई आशा नहीं थी, जब कि मैं उसके श्रेष्ठ गुणों तक को नहीं जानती थी, जब कि मैं यह भी नहीं जानती थी कि वह जीवित भी है या नहीं। वह एक वीर योद्धा था। सहस्रों मनुष्य उसे चाहते थे और उसकी प्रतिष्ठा करते थे। इसी समय मुझे उसके प्रिय मित्र की माता मिलीं। उन्होंने मुझे बताया कि अपनी विजय के सुदीर्घ समय में एक बार भी वह मुझे नहीं भूला। वाटरलू के

युद्ध में क्षत होकर वह मृतप्राय अवस्था में यहाँ, ब्रूसेल्स में, लाया गया। मैं उसे देखने और उसकी शुश्रूषा करने के लिए आई, जिस काम के लिए कि मैं पृथ्वी के घोर से घोरतर निर्जन स्थान में भी प्रसन्नतापूर्वक जाने से न हिचकती। जब अपनी मोहावस्था के कारण वह सब को भूल जाता, उसे मेरी याद बनी रहती। जब उसे अत्यन्त कष्ट होता वह इसी गोदी में अपने सिर को रख कर, जिसमें इस समय तुम्हारा सिर रक्खा हुआ है, संतोष के साथ बिना किसी शिकायत के अपनी पीड़ा को सहन करता। एक बार वह मरा-मरा हो गया था। उस समय उसने मुझसे विवाह किया, जिससे मरने से पहले वह मुझे अपनी स्त्री कह सके। और प्रियतम! मेरा नाम, जो मैंने उस विस्मृत रात्रि को ग्रहण किया....."

"मुझे याद आ गई, याद आ गई..." उसने गद्गद् होकर कहा, "...छायावत् स्मृति अब दृढ़ होती जारही है। ईश्वर को धन्यवाद है कि इस समय मेरा मन बिलकुल सुस्थ है। मैरी! मेरी प्यारी मैरी! मेरा चुम्बन करो। अपने इस मस्तक को यहाँ आराम कराओ, नहीं तो कृतज्ञता के भार से मैं मर जाऊँगा। आह! उनके अन्तिम शब्द पूरे हुए। मेरा फिर घरबार हुआ।"

इसके बाद दोनों सुखी रहे। डबलडिक को नीरोग होने में बहुत समय लगा, परन्तु इससे उन दोनों के सुख में किसी प्रकार की बाधा न आई। जिस रोज़ पहली बार तीनों व्यक्ति गाड़ी में चढ़ कर सैर को निकले, तब मौसमी बर्फ पिघल चुका था। बसन्त

ऋतु आरम्भ हो गई थी, तथा चिड़ियाँ झाड़ियों में बैठी अपनी कर्णमधुर चहचहाहट सुना रही थीं। लोगों ने सड़क पर आकर कप्तान रिचर्ड डबलडिक को बधाई देते हुए हर्ष-ध्वनि की।

परन्तु पूर्ण स्वस्थता प्राप्त करने के लिए अभी इंग्लैंड न जाकर उन्होंने वायु-परिवर्तनार्थ दक्षिण फ्रांस जाने का निश्चय किया। वहाँ पहुँच कर एविग्नन के समीप रुहोन नदी के तट पर उन्हें एक मनोनीत स्थान मिल गया, जहाँ छै महीने रह कर वे इंग्लैंड को वापिस आए। तीन वर्ष बाद वृद्धावस्था के कारण टांटन की माता अधिक दुर्बल हो गई थीं। फ्रांस में वायु-परिवर्तन से उन्हें लाभ हुआ था। अतः एक वर्ष वहीं रहने का विचार कर वह अपने स्वामिभक्त नौकर को साथ लेकर फिर फ्रांस पहुँचीं। यह स्थिर हुआ कि वर्ष के अन्त में कप्तान रिचर्ड डबलडिक उन्हें फ्रांस जाकर लिवा लाएँगे।

[६]

फ्राँस पहुँच कर नियमपूर्वक वह अपने दोनों बच्चों को—इसी प्रकार वह अब उन्हें समझती थीं—पत्र लिखती रहीं। एक्स प्रांत के समीप ही वह एक किसान का मकान किराए पर लेकर रहने लगी थीं। पड़ोस में ही एक और कुटुम्ब रहता था जिसके साथ उनकी घनिष्ठता हो गई। घनिष्ठता का आरम्भ कुटुम्ब की एक छोटी कन्या से हुआ था जो टांटन-जननी को प्रायः अंगूर के बाग़ में मिलती तथा उनकी पुत्र-विषय की अथवा युद्ध-सम्बन्धी कहानियाँ सुनने से कभी नहीं ऊबती थी। कुटुम्ब के अन्य लोग भी

उतने ही सौम्य और सज्जन थे जितनी कि बालिका, और धीरे-धीरे दोनों पक्षों में सौहार्द इतना बढ़ गया कि अंग्रेज़ महिला ने बारहवें मास उन्हीं के यहाँ रहने का उनका निमन्त्रण स्वीकार कर लिया। वह ये बातें ज़रा-ज़रा करके अपने घर को लिख देती थीं और अपने अन्तिम पत्र में उन्होंने गृह-स्वामी के हाथ का लिखा हुआ एक विनय-पूर्ण परचा भी रख दिया जिसमें फ्राँस आने के अवसर पर "लब्धप्रतिष्ठ कप्तान रिचर्ड डबलडिक महोदय के सहवास-गौरव" के लिए प्रार्थना की गई थी।

कप्तान डबलडिक ने इसका सविनय उत्तर देकर सशरीर अपने पत्र का अनुगमन किया। तीन वर्ष की शान्ति के पश्चात् उस प्रदेश में यात्रा करते हुए कप्तान ने उस समय के लिए धन्यवाद दिया जो अब संसार को प्राप्त हुआ था। नाज पक कर सुवर्णमय हो गया था—वह अस्वाभाविक लौहित्य में रंगा हुआ नहीं था। बालें काट कर बाँध ली गई थीं—वह प्राणहर सेनाओं के नीचे कुचली नहीं जाती थीं। धुआँ सुखी परिवारों की अंगीठियों से निकल कर वायु में मिल रहा था, जलते हुए मकानों की लपलपाती हुई ज्वालाओं से नहीं। गाड़ियाँ पृथ्वी के भिन्न-भिन्न पदार्थों से भरी हुई जा रही थीं—ज़ख्मियों और मुरदों से नहीं। डबलडिक को ये बातें बड़ी सुन्दर दिखाई देती थीं, क्योंकि उसने भयानक उलट-फेर को देखा था और जिस समय सायंकाल को वह अपने निमंत्रक के मकान पर पहुँचा उसका हृदय उल्लास और कोमलता से भरा हुआ था।

यह पुराने ढंग का बुर्जियोंदार एक बड़ा मकान था। दिन की गर्मी के बाद अब दरवाज़ों और खिड़कियों के परदे खोल दिए गए थे। मकान के चारों तरफ़ की अवस्था एक प्रकार की अव्यवस्था और लापरवाही की सूचना दे रही थी। गृह के सब द्वार खुले पड़े थे। कप्तान ने बाहर कोई साँकल या घंटी न देखकर भीतर प्रवेश किया।

भीतर पत्थर का बना हुआ एक विशाल भवन था। यहाँ भी बजाने को कोई घंटी दिखाई न दी। कप्तान ने रुक कर अपने जूतों की खट-खट पर लज्जित होते हुए कहा, "बिस्मिल्लाह ही खराब हो रही है क्या?"

इसी समय डबलडिक चौंक पड़ा। उसका मुख पीला पड़ गया और वह जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया। ऊपर की गैलरी में वही फ़राँसीसी अफ़सर खड़ा हुआ उसे दिखाई दिया जिसकी प्रतिमा इतने समय से उसके हृदय पर अंकित थी। प्रतिमा और मूल के रूप, आकार आदि में कितना साम्य था।

अफ़सर शीघ्र ही अपने स्थान से हट कर अदृश्य हो गया और डबलडिक ने जीने से उसके उतरने का शब्द सुना। डबलडिक के सामने आते ही अफ़सर का मुखमंडल खिल उठा। उसने कहा, "अहा, महाशय कप्तान रिचर्ड डबलडिक साहब हैं! आपको देख कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। क्षमा कीजिएगा। सभी नौकर बाग़ में उत्सव मनाने चले गए हैं। इससे आपको द्वार पर कष्ट

उठाना पड़ा। वास्तव में आज छोटी कन्या के जन्मोत्सव का दिन है जिस पर श्रीमती टांटन का इतना प्रेम और अनुराग है।"

अफ़सर का व्यवहार इतना निष्कपट और उदार था कि कप्तान अपना हाथ बढ़ाए बिना न रह सका। उसके हाथ से हाथ मिला कर अफ़सर ने कहा, "यह एक अंग्रेज़ वीर का हाथ है। मैं एक शूरवीर अंग्रेज़ का भी, चाहे वह मेरा शत्रु ही हो, उतना ही आदर कर सकता हूँ जितना अपने किसी मित्र का। श्रीमन्, मैं भी एक सैनिक हूँ।"

डबलडिक मन में सोचने लगा, "जिस प्रकार मैंने इसे याद रक्खा है उस प्रकार इसने मुझे याद नहीं रक्खा। इसने मेरे मुख को उस रोज़ शायद इतने ध्यान से नहीं देखा था जितने ध्यान से मैंने इसके मुखको देखा था। तब किस प्रकार इससे वह बात कहूँ।"

अफ़सर अपने अतिथि को बाग़ में अपनी स्त्री के समीप ले गया, जो इस समय टांटन की माता के पास बैठी हुई थी। उसकी छोटी कन्या आनन्द से विह्वल होकर उससे लिपटने को दौड़ी तथा उसका नन्हा-सा पुत्र अपने पिता की टाँगों से हिलगने के लिए घुटनों के बल भागने लगा। एक ओर कुछ दर्शक बालकों का समूह सोल्लास संगीत के संयोग में नृत्य कर रहा था, तथा एक तरफ़ मकान के तमाम नौकर नाच-नाच कर आनन्दित हो रहे थे। निर्मल आनन्द के इस मनोहर दृश्य ने शान्ति और सुख-चैन के उन दृश्यों की पराकाष्ठा कर दी, जिन्हें देखकर कप्तान को अपनी यात्रा में परम मनः सुख प्राप्त हुआ था।

परन्तु इस समय वह बड़े मानसिक कष्ट का अनुभव कर रहा था। सहसा झनझनाती हुई एक घंटी बजी और अफ़सर ने उसे उसके रहने के कमरे दिखा लाने की प्रार्थना की। दोनों ऊपर जाकर उसी गैलरी में पहुँचे जहाँ से अफ़सर ने कप्तान को देखा था और तब खूब सजे हुए एक विशाल कक्ष ने, जिससे लगी हुई ही एक दूसरी कोठरी भी थी, कप्तान रिचर्ड डबलडिक का स्वागत किया।

अफ़सर ने पूछा, "आप वाटरलू के युद्ध में थे।"

"था। और बैडजाज़ के युद्ध में भी।"

अपने ही रुक्ष स्वर को सुनता हुआ वह बैठ कर सोचने लगा—'अब मैं क्या करूँ! किस प्रकार इससे मैं वह बात कहूँगा?' दुर्भाग्य से इन दिनों पिछले युद्ध के कारण अंग्रेज़ और फ़रांसीसी अफ़सरों में अनेक शोचनीय द्वन्द्व-युद्ध हुआ करते थे और डबलडिक इस समय इन्हीं द्वन्द्व-युद्धों के विषय में विचार करता हुआ सोच रहा था कि किस प्रकार इस अफ़सर के अतिथि-सत्कार से छुटकारा पाया जाए।

इसी चिन्ता में भोजन का समय बीत रहा था। इतने में टांटन-जननी आई और कमरे के बाहर से ही बोलीं, "मुझे वह चिट्ठी तो दो जो मैरी ने मेरे लिए भेजी है।"

कप्तान ने सोचा—"और, सब से अधिक तो उनकी माता की ही बात है। इन्हीं से मैं वह दारुण कथा कैसे कहूँगा?"

जननी ने फिर कहा, "मुझे आशा है, गृहस्वामी से तुम्हारी

जीवन-व्यापिनी मित्रता हो जाएगी। वह इतने सरल-हृदय और उदार हैं रिचर्ड, कि तुमसे उनका आदर करते ही बनेगा। आह, यदि वह जीवित होता"—और यह कह कर उन्होंने टांटन के बालोंवाले तावीज़ को चूम लिया—"तो वह अवश्य पूर्ण उदारता से उनके गुणों की प्रशंसा करता और सचमुच सुखी होता कि वे बुरे दिन अब बीत गए हैं जिसके कारण ऐसा मनुष्य उसका शत्रु हुआ।"

माता यह कह कर चली गई।

डबलडिक उठ कर प्रथम उस खिड़की के पास गया जहाँ से बाग़ में का नृत्य-गान दिखाई पड़ता था, और तब दूसरी पर, जहाँ से शान्तिपूर्ण अंगूर की लताओं का हँसता हुआ दृश्य दृष्टिगोचर होता था। उसने आव्हान करते हुए कहा—"खोए हुए मित्र की पवित्र आत्मा! क्या यह तुम्हारा ही प्रभाव है कि मेरे हृदय में सद्विचार उत्पन्न हो रहे हैं? क्या तुम्हारी ही कृपा से इस मनुष्य से मिलने को आते हुए रास्ते भर मुझे बदले हुए समय की धन्यता के चिन्ह दिखाई दिए हैं? क्या तुमने ही अपनी भग्न-हृदया माता को मेरा प्रतिहिंसक हाथ रोकने के लिए भेजा है? क्या तुम ही मेरे कान में कह रहे हो कि इस मनुष्य ने तेरी ही भाँति केवल अपने कर्तव्य का पालन किया? मेरे उद्धारक की, मुझे नवजीवन प्रदान करने-वाली आत्मा! यदि तुमने मेरा हाथ न पकड़ा होता तो अब तक न मालूम मैं कब का पाताल पहुँच गया होता।

डबलडिक हाथों के बीच में अपने सिर को रख कर बैठ गया, और जब वह उठा तो उसने अपने जीवन की यह दूसरी दृढ़ प्रतिज्ञा की कि—'दोनों के जीते जी, न तो फ़रांसीसी अफ़सर को, न टांटन की माता को और न किसी और ही व्यक्ति को कभी मैं उस बात को बताऊँगा जिसे केवल मैं ही जानता हूँ।'

जब रात को सब लोग भोजन करने बैठे तो उसने अपने गिलास से अफ़सर के गिलास को छूते हुए, सब अपराधों के क्षमा करनेवाले ईश्वर के नाम पर, हृदय ही हृदय में उसे क्षमा कर दिया।*

---

* चार्ल्स डिकेन्स की एक अंग्रेज़ी कहानी।

तीसरी

हम दोनों साथ-साथ खेले थे। स्मृति-विकास के प्रथम परिच्छेद से हमारे संयोगी जीवन के छोटे से ग्रन्थ में कभी कोई ऐसा पृष्ठ नहीं खुला जिसमें हमारे निरन्तर साहचर्य का कोई मधुर तथा अन्तस्तल-मोदी दृश्य अंकित न हो। जिस समय प्रातःकाल की सलज्ज समीर अपनी भीरु गति से समस्त प्रकृति को चंचल कर देती थी उस समय हम दोनों कभी विन्ध्याचल के किसी ऊँचे टीले पर बैठ कर अपने घोंसलों से निकली हुई चिड़ियों का कर्ण-मधुर चुहचुहाना सुन कर तन्मय हो जाते थे, कभी सरिता की तरंगराजि को क्रीड़ा करते देख स्वयं भी उसका अनुकरण करने की निष्फल चेष्टा करते थे और कभी अपने पुराने झरने के स्वच्छ जल में एक दूसरे को ढकेल कर खिलखिला कर हँस पड़ते थे। हँसते-हँसते उसके गाल, और शायद मेरे भी, अनार के फूल हो जाते थे, और तभी सूर्यदेव शायद हमारी शरारत का दंड देने के लिए अपनी प्रथम किरण का प्रहार हम ही पर करते हुए हमारी आँखों को चौंधिया देते थे। परन्तु हम तो प्रकृति के निर्माय शिशु ठहरे, हम इसे भी खेल ही समझते और अपनी एक आँख मीच कर, मानो सूर्यदेव को चिढ़ाने के लिए, उनकी तरफ़ खूब देखते, खूब देखते। इसी तरह समय बीतता और दिन चढ़ जाता।

हम लौट कर अपनी गुफ़ा में चले जाते। मार्ग में पड़ने-वाले फल-वृक्ष पवन की प्रेरणा से अपने हाथ बढ़ा कर हमें अपने फलों की भेंट देते और हम उसे स्वीकार कर खा जाते। यह हमारा स्वभाव था—खाने के उद्देश्य को हम नहीं समझते थे—भूख ने हमें कभी नहीं सताया था। इसके बाद गुफ़ा का द्वार दिखाई देता और हम दोनों सस्पर्द्ध होकर उसकी ओर दौड़ते। हम में से जो कोई पहले पहुँच जाता वही दूसरे को खूब बनाता। तब हम क्या करते। चिढ़ाने के बाद क्षमा माँगते, रूठ जाने पर मनाते और फिर उत्सुकता के साथ एक दूसरे की गोदी में पड़ कर सो जाते। आह! उस समय हमारा वह सुख कितना अधिक होता, कितना शुद्ध होता, कितना निष्पाप होता। संसार के प्राणी क्या कभी उसका अनुभव कर सकते हैं?

संध्या होते ही हम फिर अपनी गश्त को निकल पड़ते। यदि हमारा प्रातः-भ्रमण निर्मल आनन्द का मन्दवाही स्रोतः-शिशु था तो यह परिणत वेगवाला गम्भीर नद। यदि उस समय प्रकृति का निरूपण होता था तो इस समय उसका अनुकरण। यदि दिनारम्भ में सूर्यदेव की धृष्टता पर उनको चिढ़ाने का कार्यक्रम जारी रहता तो दिनान्त में चन्द्रदेव को वत्सलता पर विमुग्ध होकर उनकी ओर प्रेमभरी दृष्टि से घंटों तक देखना। चिड़ियों का फुदकना देख कर हम दोनों भी फुदकने लगते, हरिण-हरिणी का उछलना देख कर हम उछलने लगते और खरगोश का भागना देख कर हम भागने लगते। जहाँ दो वृक्ष अपनी अपनी शाखाएँ गूँथ

कर नृत्य अथवा आलिंगन का सा अभिनय करते वहीं—उनके नीचे—हम दोनों भी अपने-अपने उठे हुए हाथ मिलाकर उनकी प्रेमक्रीड़ा की नक़ल करते। सारांश, इसी प्रकार हमारा वह सुख-परिप्लुत जीवन समय के प्रवाह में हिलोरें खाता हुआ न मालूम किस अक्षय आनन्द की ओर द्रुत वेग से चला जा रहा था। परन्तु अदृष्ट! तूने हमारा वह सुख क्यों छीन लिया? समय! तूने हमारे वे दिन कहाँ खो दिए?

[२]

हमारे माता-पिता कौन थे? मैं इसे क्या जानूँ। अपने प्रकृति-जीवन के दिनों में तो यह प्रश्न कभी मेरे हृदय में उत्पन्न भी नहीं हुआ। जब से मैंने होश सँभाला तब से मुझे एक वृद्ध सज्जन की याद है जिन्हें हम उनकी आज्ञानुसार दादा कहा करते थे। उन्हीं के साथ हम अपनी गुफ़ा में रहते थे और उन्होंने ही हमें बोलना सिखाया था। वे हम दोनों को नदी में नहाने लिवा जाते थे और उनके साथ घूम-घूम कर ही हम ने उपत्यका के उन स्थलों को देखा था जो अब हमारे नित्य के प्रिय आश्रय-स्थान हो गए थे।

सुबह का समय था। दादा सो कर उठे थे। हम दोनों भी पत्थर के फ़र्श पर बैठे आँखें मल रहे थे। इतने में दादा ने कहा, "आँखें क्या मलते हो? चलो उठो, जंगल हो आएँ।" हम दोनों ने भी प्रेम से कहा, "चलो दादा।" हम उन्हें बड़ा प्रेम करते थे।

तीनों जन गुफा से निकल कर नदी की ओर चल दिए। प्रातः कृत्य से निपट कर हम ने नहाना आरम्भ किया। दादा हम दोनों को स्नान कराकर बाद में स्वयं नहाने गए। उन्होंने डुबकी लगाई। परन्तु यह क्या! इतनी देर हो गई, फिर भी वह जल के भीतर से नहीं निकले। प्रतीक्षा में कितनी ही देर हो गई परन्तु उनके दर्शन नहीं हुए। हाय, हमारे दादा को कौन ले गया!

अब से हम अनाथ हो गए। दादा के बिना जंगल सूना लगने लगा। रोते-रोते गुफा में पहुँचे, पर वहाँ भी जी न लगा। जैसे-तैसे कुछ दिन-सप्ताह-महीने बीत गए। दादा की स्मृति भी कम हो चली। हम फिर सुख का अनुभव करने लगे।

मैं उसे तितली कहा करता था। दादा के लुप्त होने के बाद से तितली मुझे ही अपना सब-कुछ समझने लगी थी। वह एक क्षण के लिए भी मुझ से अलग न होती। एक रोज़ जब हम सन्ध्या-शोभा का अवलोकन करते हुए टहल रहे थे हम उसी जगह आ पहुँचे जहाँ हमारे दादा विलीन हुए थे। उस स्थान को देखते ही तितली कुछ गम्भीर हो गई। बोली, "यह नदी बड़ी बुरी है। इसी ने तो दादा को छीन लिया था। अच्छा अब हम इसमें कभी न नहाएँगे।"

मैंने कहा, "क्यों?"

तितली ने उत्तर दिया, "जो इसने अब-की तुम्हें भी छीन लिया तो मैं क्या करूँगी?"

मैंने कहा, "मुझे यह न छीन सकेगी।"

"अच्छा, और जो मैं ही इसमें रह गई तो तुम क्या करोगे ?"

"तो मैं भी तुम्हारे पीछे कूद पड़ूँगा।"

"नहीं, अब हम इसमें नहीं नहाएँगे।"

"अच्छी बात है, अब नहीं नहाएँगे।"

तितली ने पुनः कातर होकर कहा, "देखो, हम तुम कभी अलग न होंगे।"

मैंने आग्रह से उत्तर दिया, "कभी नहीं, तितली।"

"और जो तुम किसी दूसरी तितली के साथ घूमने लगे तो ?"

"दूसरी तितली कहाँ से आएगी ?"

"यह जो इतनी उड़ती हैं।"

"अरे नहीं, ऐसा भी कहीं होता है ? तुम तो पागल हो।"

तितली सन्तुष्ट हो गई। हम दोनों गुफा को लौट आए।

[३]

दादा को छीन कर भी भाग्य से हमारा निर्दोष सुख न देखा गया। अथवा हमारा क्यों—मालूम होता है भाग्य को मुझ से ही अधिक शत्रुता थी। पहाड़ी पर उछलते-कूदते एक रोज सहसा मैं नीचे गिर पड़ा और बेहोश हो गया। न मालूम कितने घंटे या कितने रोज बाद मुझे होश आया, परन्तु आँख खुलने पर तितली वहाँ न दिखाई दी। चोट लगने के कारण शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में बड़ी पीड़ा हो रही थी। पर तितली की अनुपस्थिति के कारण मैं सब-कुछ भूल गया। शीघ्र ही उठ कर उसके अनुसंधान के लिए चल पड़ा।

तमाम जंगल छान डाला। एक-एक गुफा देख ली। कोने-कोने में भटक आया। पर तितली का कहीं पता न लगा। कैसी विपत्ति! अब क्या करूँ? तो क्या तितली की शंका ही सत्य हुई? हाँ, ठीक है, उसके बिना अब मैं क्या करूँगा।

वह रमणीय उपत्यका मेरे लिए भयानक हो गई। उसमें एक क्षण भी रहना अब मुझे भारी हो गया। अगले ही रोज़ निरुद्देश्य की भांति मैं वहाँ से चल दिया।

[४]

सेठजी का काम खूब चलता है। लोग कहते हैं इसका कारण मैं ही हूँ। अब से तीन वर्ष पहले कारोबार के लेने-देने पड़ रहे थे। परन्तु जब से मैं उनके यहाँ आया हूँ तब से उनकी दिन दूनी रात चौगुनी वृद्धि हो रही है। इसमें, मनुष्यों का कहना है कि मैं ही भाग्यवान हूँ जो अपनी जंगली अवस्था में पदार्पण करते ही सेठजी को मैंने उठा दिया। सेठजी के नौकर मुझे भटकता हुआ देख कर अपने साथ लिवा लाए थे और यहाँ सेठजी ने साल-डेढ़ साल तक मुझे पढ़ना-लिखना सिखाया था। साथ ही साथ दूकान का भी थोड़ा-बहुत काम सिखाते-जाते थे। अब पिछले साल भर से मैं ही उनकी दूकान का कर्ता-धर्ता हूँ। पिछले वर्ष मेरा विवाह भी हो गया है और जो लोग ऊपर-वाली बातें कहते हैं उन्हीं के मत के अनुसार "यह जंगली जानवर ऐसा तक़दीर-वाला और बुद्धिमान् निकला कि तीन ही बरस में दुनिया की

सब बातों से अच्छी तरह जानकार हो गया।" उनकी ये बातें सत्य हैं और मुझे भी अपनी बुद्धिमानी की प्रशंसा सुनकर बहुत लोगों की मत्सरता को देखकर अपने ऊपर अभिमान होने लगता है। परन्तु जब वे मुझे 'जंगली जानवर' कहते हैं, तब तो मेरे क्रोध का ठिकाना नहीं रहता।

मुझे अब अपना पिछला जीवन याद नहीं। तितली की स्मृति भी अधिक नहीं सताती। दुनिया और दुनिया के सुख ही मेरे लिए सब-कुछ हैं। मेरी स्त्री भी मुझे मेरे इस मनोभाव में काफ़ी सहायता पहुँचाती है। मैं उसे प्यार करता हूँ और वह मुझे प्यार करती है। उसके साथ मुझे स्वर्ग का आनन्द मिलता है।

एक रोज़ संध्या के समय मैंने अपनी स्त्री से कहीं नगर के बाहर घूमने जाने का प्रस्ताव किया। वह सहमत हो गई। मैंने सेठजी की घोड़ा-गाड़ी माँग ली। गाड़ी शहर के बाहर चलने लगी। थोड़ी देर में वही पुरानी उपत्यका आ गई। ऐं, तब क्या यह जंगल शहर से इतना समीप था? मैंने कहा, "हाँके चलो।"

अपने बाल्य-निवास गुफ़ा के सामने मैंने गाड़ी रुकवाई और स्त्री को साथ लेकर उस परिचित स्थान की सैर कराने चला। गुफ़ा में घुसना ही चाहता था कि झट से एक बड़े से पत्थर द्वारा दरवाज़ा बन्द हो गया। इसके साथ ही यह आवाज़ सुनाई दी, "अब यह गुफ़ा तुम्हारे योग्य नहीं है। नगरों के ऊँचे-ऊँचे महल ही तुम्हारे निवासालय होने के योग्य हैं।"

मैं भौचक्का होकर चारों तरफ़ देखने लगा, परन्तु जो कुछ मैंने

देखा उस पर मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैंने देखा कि मुझसे दो-चार गज़ दूर एक पत्थर पर खड़ी तितली ये शब्द कह रही है। मेरे नेत्र उसकी तरफ एकटक हो कर रह गए। मैं उसकी तरफ़ अग्रसर हुआ भी। परन्तु उसने कुछ क़दम पीछे हट कर कहा, "नहीं, अब ऐसा दुस्साहस मत करना। अब तुम मेरे नहीं रहे। तुमने दूसरी तितली को अपनी सहचरी बनाया है।" यह कह कर उसने मेरी स्त्री की ओर उँगली उठा दी और मैं स्तम्भित रह गया। मेरे होठ कुछ कहने के लिए खुले, परन्तु उनसे कोई शब्द नहीं निकला। इसके बाद तितली फिर कहने लगी, "तुमने प्रतिज्ञा भंग की है। तुमने मुझे धोखा दिया है। परन्तु खैर, तुम सुख से रहो। घबराना मत, मैं ईश्वर से प्रार्थना करूँगी कि वह तुम्हें इसके लिए दंड न दें।"

सुनते ही एक चीत्कार के साथ मैं कह पड़ा—"दंड! ओह, दंड!" इसी समय मेरी आँख खुल गई। मुझे मालूम हुआ कि यह स्वप्न था।

उस दिन से मेरा मन बड़ा विक्षुब्ध रहने लगा। मैं प्रायः इस घटना पर सोचा करता। परन्तु आज तक मैं नहीं जान सका कि उस स्वप्न का क्या अर्थ था।❀

❀ एक अंग्रेज़ी कहानी के आधार पर।

समर्पित

श्री

बी

जी

हु

ग

[illegible]

एक रूपक

रूपक के पात्र

एकुलीना—सत्तर वर्ष बूढ़ी एक पुराने ढंग की स्त्री। फुर्तीली और नेक।

माइकेल—उसका पुत्र। आयु पैंतीस वर्ष। अपने ही में मस्त रहनेवाला, कुछ अहंकार और तेज़ स्वभाव-वाला।

मरथा—माइकेल की स्त्री। आयु बत्तीस साल। बहुत बोलती है और हर समय बड़बड़ाती रहती है।

पराशा—मरथा और माइकेल की कन्या। आयु दस वर्ष।

तारस—गाँव का मुखिया। गंभीर और कुछ अहंकारी। धीरे-धीरे बोलता है।

आवारागर्द—आयु चालीस वर्ष। बड़े-बड़े और शिष्ट शब्द बोलना चाहता है। मदिरापान के बाद विशेष स्वच्छन्दता का व्यवहार करने लगता है।

इगनाट—चालीस वर्ष की आयु-वाला एक मूर्ख हँसोड़। हरदम प्रफुल्लित रहता है।

पड़ोसी—आयु चालीस वर्ष। चलता पुर्ज़ा।

पहला अङ्क

मौसम पतझड़ —एक किसान की झोपड़ी जिसमें एक छोटी-सी कोठरी अलग बनी हुई है—एकुलीना बैठी काम कर रही है—मरथा आटा मल रही है—पराशा झूला झूल रही है।

मरथा—रा—आम ! मेरे दिल पे भारीपन सा मालूम हो रहा है और धक्-धक् सी हो रही है। जान पड़ता है कोई कलेस होगा। अब तलक उनके वहाँ ठहरने की जरूरत नहीं थी। सायद आज भी वैसे ही होगा जैसे कल उन्होंने लकड़ी बेच के आधे दामों को दारू पी ली थी। और फिर सब बातों का दोस मेरे सिर पे...

एकुलीना—कलेस की बात क्यों सोचे है, बहू। अभी भौतेरी सबेर है और सहर भी तो भौत दूर है। इस बखत तो...

मरथा— सबेर तुम किसे कहो हो जी ? एकिमिच आ भी गया। वह तो उनके बाद गया था, और वे अभी तलक नहीं आए। बस मुसकिल ही मुसकिल है। दिन भर दिक्क होते रहो...ये ही हमारा तो सुख है।

एकुलीना—एकिमिच तो अपना बोझ सीधा किसी गाहक के पास ले गया था। माइकेल तो अपना बोझ बेचने को बजार में गया होगा।

मरथा—जो वह अकेले होते तो मुझे कोई भै नहीं था, पर उनके साथ में इगनाट भी जो है। जब कभी वह उस दईमारे के—राम भला करे, मुंह से गाली क्यों निकले है—जब वह उस इगनाट के साथ होवें हैं तो दारू पिए बगैर नहीं मानते। हमारा तो भाग

ही ऐसा है। अबेर-सबेर रोज पिसते रहो—सब कुछ हमारे ही सिर पे है। जो इससे कुछ फ़ायदा भी होता तो! पर ह्याँ तो दिन-दिन भर मरो, दिन-दिन भर मरो...और क्या सुख है...

द्वार खुलता है। एक फटेहाल आवारागर्द के साथ तारस का प्रवेश।

तारस—राम राम। मैं एक आदमी लाया हूँ। इसे रात-भर रहने के लिए जगह की ज़रूरत है।*

आवारा०—जै रामजी की। जै रामजी की।

मरथा—हमारे ही ह्याँ बेर-बेर इन लोगों को क्यों लाते हो, चौधरी? दूसरों के ह्याँ क्यों नहीं ठहराते? अभी पिछले बुद्ध को ही तो हमने एक आदमी को ठहराया था। इन्हें पनीड़ा के ह्याँ ले जाया करो। उसके कोई बाल-बच्चे भी नहीं हैं। हमें अपने ही घरुए से फ़ुरसत नहीं मिलती, इनकी कौन देख-भाल करे। हाँआँ, सदा हमारे ही ह्याँ ले आवें हैं जो कोई भी हो...

तारस—हर आदमी बारी-बारी से ही तो उन्हें ठहराएगा न, मरथा।

मरथा—हाँ जी, ये कह देना बड़ा आसान है कि बारी-बारी से। पर मेरे ह्याँ तो बालक-बच्चे हैं और मालक भी आज घर पे नहीं है।

तारस—खैर, इस आदमी को आज रात तो यहाँ सो ही जाने

---

*गाँव में ऐसा नियम था कि यदि कभी वहाँ कोई आश्रयविहीन या अनाथ व्यक्ति आता तो गाँव का मुखिया उसे किसी ग्रामवासी के यहाँ ठहरा दिया करता था।

दो। जिस जगह सोएगा वहाँ तो कुछ खराब कर ही नहीं देगा। कल फिर...

एकुलीना—(अनाथ से) अजी तो, ओ—ओ, बैठ जाओ फिर। अच्छी बात है, आज हमारे ह्याँ ही सही। इनके सोने से कोई जमीन तो घिस ही नहीं जाएगी।

आवारा०—मेरा धन्नवाद। हो शके तो मुझे कुछ मुँह चलाने को मिल जाए।

मरथा—अभी जरा बैठके कुछ देखो-भालो, कुछ कहो-सुनो, कि खाने की ही जल्दी पड़ गई? क्यों, दिन भर गाँव में कुछ नहीं माँगा क्या?

आवारा०—(निश्वास छोड़ कर) क्या करूँ, मालकिन। अपनी आबरूई का ख्याल करके मुश्शे माँगा नहीं जाता। पर, अपना कहने को कुछ नहीं होने शे...

(एकुलीना उठ कर डबलरोटी ले आती है और उसमें से थोड़ा-सा टुकड़ा तोड़ कर अनाथ को देती है।)

आवारा०—धन्नवाद*। (रोटी लेकर बेसब्रेपन से खाता है।)

तारस—और माइकेल आज कहाँ है जी?

मरथा—घोड़ों की घास का गट्ठर पैठ में ले गए थे सो अभी

*आवारागर्द का कुछ पढ़े-लिखे आतंकवादियों से सम्पर्क रह चुका था। इसलिए वह जब दूसरों से मिलता तो, पढ़ा-लिखा न होने पर भी, दूसरों पर अपनी शिष्टता और पढ़े-लिखे-पन का प्रभाव डालने का इच्छुक रहता।

तलक तो लौटे नहीं। अब तलक तो आ जाते। कोई-न-कोई बात हुई होगी।

तारस—बात ऐसी क्या हुई होगी ? क्यों ?

मरथा—और नहीं तो क्या ! कोई अच्छी बात थोड़ेई, बुरी ही बात की आसा करनी चाहिए। घर से बाहर होते ही वह हम सब की बात भूल जाते हैं। मैं तो समझूँ हूँ नसे में भरे हुए ही आएँगे।

एकुलीना—(कातने के लिए बैठ कर मरथा की ओर संकेत करती हुई तारस से) इससे चुप बैठा ही नहीं जाता। मैं कहा करूँ हूँ न, कि औरतों को सदा कुछ-न-कुछ बड़बड़ाने के लिए चहिये। सो, वही बात इसकी है।

मरथा—अजी, जो वह अकेले होते तो मुझे कोई भै नहीं था। पर उनके साथ में इगनाट भी तो है।

तारस—(मुस्करा कर) हाँ हाँ, ठीक है। इगनाट को तो हर दम ही एक-दो चुल्लू मिलता रहना चाहिए।

एकुलीना—तो क्या माइकेल जानता नहीं है कि इगनाट कैसा सकस है। इगनाट एक ढंग का आदमी है और माइकेल दूसरे ढंग का।

मरथा—हाँ हाँ, तुम्हारे लिए तो कह देना बड़ा आसान है। इसे तो मैं ही जानू हूँ कि वह कैसी पिएँ हैं। हाँ, जिस बखत वह पिए नहीं होते उस बखत उनकी बराबर दूसरा आदमी नहीं, पर जब वह नसे में होवें है तो—क्या तुमने देखा नहीं ? फिर तो कोई

कुछ बाल ही नहीं सकता। जो कुछ भी कहो उसे उलटा ही समझ हैं।

तारस—पर जरा तुम औरतें अपनी तरफ़ भी तो देखा करो। अगर एक बखत किसी ने जरा सी पी भी ली और वह अंट-संट बकने भी लगा तो क्या हो गया। सो-सा के वह अपना नसा उतार देता है और फिर सब ठीक-ठीक हो जाता है। पर तुम लोग तो हर दम उसके पीछे ही पड़ी रहती हो।

मरथा—जब वह नसे में होवे हैं तो किसी तरह राजी होते ही नहीं, कोई कितना ही सिर मारे चाहे...

तारस—पर तुम्हें भी इतना जरूर समझना चाहिए कि कभी कभी एकाध घूँट पिए बगैर हम लोग कैसे रह सकते हैं। तुम्हारा औरतों का काम घर के भीतर का है पर मरदों को तो काम के बखत या साथियों में बैठ कर पीना ही पड़ता है। बस, जो कोई भी पीता है इसी तरह पीता है। और इसमें नुकसान भी क्या है?

मरथा—तुम जो चाहो सो कहो, पर हम औरतों की बड़ी आफत है—सच्ची, बड़ी आफत है। जो कहीं तुम लोगों को भी हमारा कुछ काम करना पड़ता तो...ओहो, तुम्हारा तो राग ही दूसरा हो जाता...आटा मलना, रोटी बनाना, उन्हें सेकना, कातना, बुनना, ढोरों की देख-भाल—दुनिया भर के काम हैं जी... बालकों को निहलाना-धुलाना, कपड़े पहनाना, खाना खिलाना—सब हमारे ही सिर पे हैं। और जो जरा-सी भी बात उनके मन

के माफक नहीं हुई तो बस फिर तो...और जो कहीं वह पिए हुए तब तो...हरे राम ! हमारी भी कैसी जिन्दगी है।

आवारा०—(रोटी चबाता हुआ) शच बात है। शच बात है। यह ही शब बातों की जड़ है।—यह शराब ! जिन्दगी की तमाम मुशीबतें इशी जहरीली चीज शे पैदा होती हैं।

तारस—मालूम होता है तुम्हें भी इसने चौपट किया है।

आवारा०—नहीं, यह बात तो नहीं। पर मैं भी इशशे कुछ नुकशान उठा चुका हूँ। अगर मैंने शराब न पी होती तो मेरी जिन्दगी और ही होती।

तारस—मेरी समझ तो यह है कि कभी-कभी कायदे-माफिक पी लेने में कोई हरज नहीं है।

आवारा०—पर मैं कहता हूँ कि इशमें ऐशी ताकत मौजूद है जो इंशान को बरबाद करके ही छोड़ती है।

मरथा—यही तो मैं भी कह रही हूँ। चाहे जितनी दिक्कत उठाओ और भरसक सँभाल के काम करो पर इनाम मिलेगा यह कि खूब गालियाँ खाओ और कुत्ते की तरह पिटो।

आवारा०—इतना ही नहीं। ऐशे भी लोग होते हैं जो शराब पीकर अपने शिर को भी खो बैठते हैं और ऊटपटाँग काम करने लगते हैं। जब वे नशे में नहीं होते हैं तब तो उन्हें कुछ भी दो, जो उनका नहीं है उशे लेंगे हीं नहीं। पर जब वे पिए होते हैं तब हरेक किशी की अच्छी चीज को हथिया बैठते हैं। इशीलिए बहुश-शे लोग पिटते हैं और जेलखाने में ठूँश दिए जाते हैं। जब तक

मैं नहीं पीता हूँ तब तक तो शब बातें ईमानदारी और मजे के शाथ होती रहती हैं, पर जब मैं थोड़ी बहुत पी लेता हूँ—मेरा मतलब, जब दूशरे लोग पी लेते हैं तो जो कुछ भी उनके शामने आता है उशी को हथियाने लगते हैं।

एकुलीना—और मैं तो समझती हूँ यह सब अपना ही दोस है, सरब-बराब को तो लोग नाहक ही कहे हैं।

आवारा०—बेशक! जब तक कोई अच्छी तरह रहे, यह उशका ही दोश है। पर यह भी तो एक तरह की बीमारी ही है।

तारस—बहुत बढ़िया बीमारी। (अलग कोठरी में बन्द कर रखने से बड़ी जल्दी अच्छी होती है। अच्छा, राम राम। अब जाता हूँ। (जाता है।)

(मरथा हाथ धोती है और जाना चाहती है।)

एकुलीना—(अनाथकी रोटी समाप्त हो गई देख कर) बहू, ओ बहू। इन्हें जरा सी रोटी और तोड़ दे।

मरथा—चूल्हे में जाए वह। मुझे अभी चाय का पानी उबालना है। (जाती है।)

(एकुलीना उठ कर थोड़ी-सी रोटी और तोड़ लाती है और आवारागर्द को देती है।)

आवारा०—धन्नवाद। मेरी भूख बहुत बढ़ी हुई मालूम होती होगी तुम्हे।

एकुलीना—तुम मजूरी करते हो क्या?

आवारा०—कौन? मैं? नहीं, नहीं, मैं इंजन-डराइवर था।

एकुलीना—और तुम्हें तनखा क्या मिलती थी ?

आवारा०—मुझे शाठ-शत्तर रुपए महीना पड़ जाते थे।

एकुलीना—यह तो बड़ी अच्छी आमंदनी थी। फिर तुम्हारी यह दीन हालत कैसे हो गई ?

आवारा०—दीन हालत ! कोई मैं ही एक ऐशा थोड़े ही हूँ। जमाना ही ऐशा खराब आ गया है कि इशमें कोई भला आदमी गुजर कर ही नहीं शकता।

मरथा—(चाय का पानी लाती हुई) हा भगवान ! आज वह जरूर पी के आएँगे। मेरा हिरदै कह रहा है।

एकुलीना—हाँ, आज तो वह कहीं मौज उड़ाने ही पहोंच गया दीखे है।

मरथा—अब देख लो। हम रात-दिन मरें-पचें, आटा मलें, रोटी बनाएँ, सूत कातें, कपड़ा बुनें, ढोरों को संभालें, सब कुछ अपने सिर पे लें...(खटोले पर सोता हुआ शिशु मचलता है।) अरी ओ परासा, लौंडे को थपथपाती क्यों नहीं...ओहो, हमारी भी क्या जिन्दगानी है ! इतने पे भी जो कहीं वह पिए हुए आ पहुँचे तो बस...सब औंधा गया। कोई भी बात उनकी मरजी—खिलाप मुँह से निकली कि...

एकुलीना—(चाय बनाती हुई) बहू, चाय भी अब और नहीं रही है। क्या तैने उससे चाय लाने को कह दिया था क्या ?

मरथा—हाँ, कह तो दिया था। अब देखो, लाएँ कि ना

लाएँ। कह तो गए थे कि लेता आऊँगा पर वहाँ तो उन्हें घर की कोई सुध ही नहीं रहती...' चाय का सामान पटले पर रखती है।)

(आवारागर्द एक तरफ़ को हट जाता है।)

एकुलीना—हट क्यों गए ? चाय नहीं पिओगे ?

आवारा०—मेहरबानी के लिए धन्नवाद। (अपना सड़ा हुआ सिगार, जिसे वह पी रहा था, दूर को फेंक देता है।)

मरथा—और तुम हो कौन जी, किसान या कोई और ?

आवारा०—मैं तो न किशान हूँ और न कोई नवाब। मैं तो दुतरफे दरजे का हूँ।

मरथा—दुतरफा दरजा कैसा ? (चाय का प्याला देती है।)

आवारा०—धन्नवाद ! दुतरफा दरजा ऐशा कि मेरा पिता पोलैंड देश का एक शेठ था। इशी तरह के और भी कई मेरे पिता थे। और मेरी माता भी दो थीं।

एकुलीना—हरे राम ! हरे राम ! यह कैसी बात कह रहे हो ?

आवारा०—क्यों शीधी-शी तो बात है। वह एक वेश्या थी और इशलिए बहुत शे पिता थे। और दो माता ऐशे हुई कि जिशने मुझे पैदा किया था वह मेरी थोड़ी ही उमर में मुझे छोड़ गई और फिर एक दरबान की औरत ने दया करके मुझे पाला। मेरे पूरे जीवन-चरित में बड़ी-बड़ी मुशीबतों की बातें हैं।

मरथा—लो, एक प्याला और लो। क्यों तुमने कुछ पढ़ा-लिखा भी है ?

आवारा०—मेरी पढ़ाई-लिखाई भी कुछ ऐशी ही हुई। मेरी

असल माँ ने नहीं, बल्कि मेरी गोद की माँ ने मुझे एक लुहार के यहाँ नौकर करा दिया। वह लुहार मेरा पहला गुरू हुआ और उसका गुरूपना इस बात में था कि वह अपनी घनाय के ऊपर हथौड़ी के इतने घन नहीं चलाता था जितने मेरी खोपड़ी के ऊपर चपत के। पर कितना ही मारा शही उसने मुझे, वह मुझसे मेरी बुद्धि तो छीन नहीं शका..... इसके बाद मैं एक तालेवाले के यहाँ गया। यहाँ मेरी कदर हुई और मैं कारीगरों का जमादार हो गया। इस बीच में मेरी पढ़े-लिखे लोगों से जान-पहचान हो गई और मैं एक राजनीतिक दल में शामिल हो गया। दिमागी शाहित्त मैं खूब शमझ लेता था और मैंने बहुत तरक्की कर ली होती क्योंकि मेरी बुद्धि बड़ी तेज़ थी।.....

एकुलीना—जरूर! जरूर!

आवारा०—परन्तु इसी शमय एक उलट-फेर हो गया। निर्दई शाशन ने लोगों को शताना शुरू किया और मैं जेलखाने में डाल दिया गया, याने मेरी आजादगी को हवालात हो गई।

मरथा—अरे! सो कैसे?

आवारा०—हमारे हक्कों के कारण।

मरथा—काहे के हक्क?

आवारा०—काहे के हक्क! हक्क ये ही कि मोटे लोग हर शमय दावतें क्यों उड़ाते हैं और मेहन्ती प्रजा को अपनी मेहन्त का फल क्यों नहीं मिलता।

एकुलीना—और यह नहीं कि मिहन्ती लोगों को ज़मीन भी मिल जानी चाहिए।

आवारा०—हाँ हाँ, वही, वही—भूमि का शवाल न ?

एकुलीना—हाँ। नारा'न करे ऐसा हो जाए। हे देवी मैया, ऐसा तो कर ही दो। ज़मीन की हम ग़रीबों को कैसी तंगी है... और फिर—फिर अब क्या हाल है ?

आवारा०—अब ! अब तो मैं माश्को में भाग आया हूँ। मजूरों का ख़ून चूशने-वाले किशी मोटे के दरवाजे पर पहुँचूँगा—कहूँगा कि मुझे कुछ काम बताओ। क्या करूँ। इशमें नीचा तो देखना ही पड़ेगा,—पर, पेट भी तो भरना है।

एकुलीना—लो, चाय और लोगे क्या जरा-सी ?

आवारा०—धन्नवाद !

(बाहर के रास्ते में बात-चीत और शोर-गुल का शब्द।)

एकुलीना—लो, माइकेल भी आ पहुँचा। अच्छा हुआ चाय के बख़त ही आ गया।

मरथा—(उठती हुई) भगवान भला करे। इगनाट भी साथ में है। जरूर पिए हुए हैं।

(माइकेल और इगनाट का लड़खड़ाते हुए प्रवेश।)

इगनाट—क्या कर रहे हो जी तुम सब ? (मूर्ति के सामने सलीब का चिन्ह बनाता है।)) देखो जी, आगए न हम भी, हः हः हः... ऐसी-तैसी तुम सब की.....लाओ चाय लाओ.....(गाता है।)

हम पहुँचे गिरजा में ज्योंही, सब पूजा ख़तम हुई त्योंही।

हम खाना खाने पहुँचे, कुछ बचा नहीं था, लौटे ।

पर भट्टी पे जाते ही, दारू उड़ी तुरत ही, हः हः हः...

तुम हमें चाय पिलाओ और हम तुम्हें दारू पिलाएँ । मीठे को मीठा और थप्पड़ को थप्पड़, हः हः हः हः.....

माइकेल—और यह मुष्टंडा कौन है ?—यहाँ क्यों बैठा है ? (आवारागर्द की ओर संकेत करता है । फिर अपनी जेब में से एक बोतल निकाल कर चौकी पर रखता है ।) अच्छा ला, थोड़े से कुल्हड़ ला ।

एकुलीना—अरे, कुछ गड़बड़ तो नहीं करेगा ?

इगनाट—इससे बढ़िया और क्या बात होगी, तुम्हारी ऐसी-तैसी । कुछ थोड़ी-सी वहाँ पी, कुछ थोड़ी-सी यहाँ ले आए, और खूब मौज उड़ाई—इससे बढ़िया और क्या बात होगी । हः हः हः हः.....

माइकेल—(कुल्हड़ों को भर कर एक अपनी माता को देता है और एक आवारागर्द को) पिओ—तुम भी पिओ ।

आवारा०—दिली धन्नवाद । तुम्हारी तन्दुरुश्ती रहे । (पीकर कुल्हड़ खाली कर देता है ।)

इगनाट—वाह बेटा ! खूब गटकता है, ऐसी-तैसी उसकी । मैं समझूँ, भूख के कारन यह उसकी नसों-नसों में उतर गई होगी । (और देता है ।)

आवारा०—(पीता है) भगवान तुम्हारे शब काम पूरे करें ।

एकुलीना—अरे माइकेल, लकड़ियों के कुछ अच्छे दाम मिले या योंही...

इगनाट—अच्छे मिले हों या बुरे, हमने सब उड़ा डाले, तुम्हारी ऐसी-तैसी। क्यों माइकेल, सच्ची बात है न ?

माइकेल—सच्ची, बेसक सच्ची ! ऐसी चीज कोई देखने के लिए ही थोड़े-ई बनाई गई है। सौ बरस में एकाद दफे तो कुछ मजा होना चहिये, यार।

मरथा—झूठ-मूठ की बातें क्यों बना रहे हो ? यह कोई अच्छी बात है क्या ? घर में खाने के लिए भी पूरा नहीं है और तुम यह सब कर रहे हो।

माइकेल—(डाटने के ढंग से) क्या है, मरथा।

मरथा—क्या है मरथा ! मरथा क्या होती ! तुम्हारे ये काम देख के मेरा जी जले है।

माइकेल—मरथा देख...

मरथा—क्या देख मरथा ! कुछ देखने को भी हो। मैं नहीं देखना नहीं चाहती।

माइकेल—दारू उँडेल-उँडेल के मैमानों को दे। समझ गई।

मरथा—ओहो-ओ ! सराब उँडेल-उँडेल के दे ! इस तरह क्या देख रहे हो ? क्या तुमसे कोई बोल रहा है।

माइकेल—क्या कह रही है ? तू हमसे नहीं बोलेगी ? हाँ, सलगम की जड़, बता तो—तू हम से नहीं बोलेगी ?

मरथा—(सोते हुए शिशु को थपथपाने लगती है। पराशा डर कर उसके पास आजाती है।) कहती क्या ! यही कहती हूँ कि तुम से बोलता कौन है, बस...

माइकेल—अच्छा अच्छा, भूल गई तू ! (कूद कर उसके सिर में मारता है और उसकी ओढ़नी खींच लेता है ।) देख, एक—

मरथा—अरे-रे-ऐ ! ऊ-ऊ-ऊ ! (चिल्लाती हुई दरवाजे के पास भाग जाती है ।)

माइकेल—भागेगी कहाँ, खसम-करानी ! (उसकी ओर झपटता है ।)

आवारा०—(अपनी जगह से उछल कर माइकेल का हाथ पकड़ता है ।) तुम्हें कोई हक्क नहीं है कि...

माइकेल—(रुक कर आवारागर्द की ओर आश्चर्य से देखता है ।) क्यों, कहीं पिटे हुए भौत दिन हो गए हैं क्या ?

आवारा०—तुम्हें इश्त्री के ऊपर कोई ऐशा हक्क नहीं है कि उशकी बे-आबरूई करो ।

माइकेल—तू कुतिया के जने ! तू कौन होता है ? देख, यह हक्क है ! (घूंसा दिखाता है ।)

आवारा०—मैं इश्त्रियों की बे-आबरूई होती नहीं देख शकता ।

माइकेल—आ तो फिर मैं तुझे ऐसी बे-आबरूई दिखा दूँ कि अपना उलटा-सीधा भूल जाएगा...

आवारा०—हाँ दिखाओ । (उसकी गर्दन पकड़ कर दबाता है ।) दिखाओ, दिखाओ । दिखाते क्यों नहीं ?

माइकेल—(सकपकाता है और अपने हाथ फैला देता है) और जो मैं तेरी रपोट करा दूँ तो ?

आवारा०—मैं कहता हूँ, दिखाओ न ।

माइकेल—तुम तो बड़े भले आदमी हो जी। अब मेरी समझ में आया। अच्छा लो, छोड़ो। (अपने हाथ गिरा देता है। आवारागर्द उसे छोड़ता है। माइकेल सिर हिलाता है।)

इगनाट—(आवारागर्द से) औरतों पे तुम बड़े मेहरबान मालुम होओ हो जी, तुम्हारी ऐसी-तैसी।

आवारा०—मैं उनके हक्कों के लिए लड़ता हूँ।

माइकेल—(हाँफता हुआ चौकी के पास आकर मरथा से) जा, अपने देवताओं को सुकर भेज कि आज इन्होंने तुझे बचा लिया नहीं तो आज तुझे ठोक-ठोक के अचार बना डालता।

मरथा—तुमसे और आसा ही काहे की है। जिन्दगी भर हम मरें-पचें, आटा मलें, रोटी बनाएँ और...

माइकेल—अच्छा, बस-बस। हो चुका अब। (अनाथ को शराब देता हुआ) लो, पिओ। (मरथा से) अब तू टें-टें काहे को कर रही है? क्या कोई जरा-सी हँसी-दिल्लगी भी नहीं करे? ले (रुपया देता है) रख दे इसे। तीन रुपये हैं और थोड़े से पैसे हैं।

मरथा—और चाय और बूरे को जो तुमसे कहा था?

माइकेल—(अपनी जेब से चाय और बूरे की पुड़िया निकाल कर मरथा को देता है। मरथा रुपया और पुड़िया संभालती हुई कोठरी में चली जाती है।) ये औरतें भी कैसी बेबकूफ होती हैं। (आवारागर्द को फिर दारू देता है।) और लो।

आवारा०—अब तुम्हीं पियो।

माइकेल—नखरे की जरूरत नहीं है। लो इसे।

आवारा०—(पीता हुआ) भगवान तुम्हारा भला करे।

इगनाट—(आवारा से) तुमने भौत-सी अजीब-अजीब जग्हें देखीं हैं, मालुम होवे है। और तुम्हारा यह कोट कैसा बढ़िया है, बिलकुल नई किसम का। इसे कहाँ से उड़ाया तुमने? (उसकी फटी हुई बन्डी की ओर संकेत करता है।) इसे संभलबाना मत, मैं कहता हूँ। यह ऐसेई अच्छा लगता है। इसकी उमर बढ़ रही है।... और इलाज भी क्या है? जो मेरे पास ऐसा कोट होता तो मुझे भी औरतें चाहनें लगतीं। (मरथा की तरफ देख कर) सच है न?

एकुलीना—इगनाट, बकवाद क्यों करते हो? किसी आदमी की कोई बात देखे बगैर उसकी हँसी उड़ाना अच्छा नहीं है।

आवारा०—यह इनकी अशीकृशा का प्रणाम है, जी। इनका दोश नहीं।

इगनाट—मैं तो दोस्ताने में कह रहा हूँ। लो और पिओ। (शराब देता है।)

एकुलीना—ये खुद कहते हैं कि यह दारू ही सब खराबियों की जड़ है, फिर क्यों देते हो? इसी के लिए इन्हें जेल भी जाना पड़ा था।)

माइकेल—जेल क्यों जाना पड़ा था?

आवारा०—जबरदश्ती करने की वजे शे।

माइकेल—सो क्यों?

आवारा०—शो यों कि एक मोटे अशामी के पाश पहुँचे और बोले—"जो कुछ तेरे पाश हो शो धर दे, नहीं तो देख यह

पिश्तौल है।" वह पहले तो इधर-उधर करता है, फिर चुपके से २४०० रुपए निकालकर धर देता है।

एकुलीना—ओ राम !

आवारा०—हम उश रुपए को ठिकाने लगाने की फिकर में थे ही। जेम्बरीको हमारा शरदार था। पर इशी बीच में पुलिश के कौवों का झुंड-का-झुंड हमारे ऊपर टूट पड़ा और हमें शब को हिशारत में करके जेल में पटक दिया।

इगनाट—और वह रुपया भी ले गया ?

आवारा०—और क्या। पर वे मुझ पे कोई अपराध नहीं लगा शके। शरकारी वकील ने मुझशे पूछा, 'तुमने चोरी की है' और मैंने शाफ कह दिया, 'नहीं। चोरी चोर करते हैं प्रन्तु मैंने जबर-दश्ती की है, अपनी पाल्टी के लिए।' यह शुनकर वह ऐशा हक्का-बक्का हुआ कि कुछ कही नहीं शका। इधर-उधर तो बहुत की पर उशशे कुछ जवाब ही नहीं बन पड़ा। हार के यही बोला कि 'इन्हें जेलखाने ले जाओ'—याने मेरी आजादगी की पाबन्दी कर दी।

इगनाट—शब्बास कुत्ते। खूब चलाकी दिखाई। (शराब देता हुआ) लो और पिओ और पिओ, कुत्ती-पूत।

एकुलीना—हरे राम ! कैसी जबान है तुम्हारी !

इगनाट—मेरी ? नहीं अम्मा, मैं इनकी मा को थोड़े ई कह रहा हूँ। मेरी बोल-चाल ही ऐसी है, इसकी ऐसी-तैसी...तुम्हारी तन्दुरुस्ती बनी रहे दादी-ई.....

(मरथा चाय लाकर उँडेलने लगती है)

माइकेल—हाँ, अब ठीक है। बुरा तो नहीं मानी न ? देख, मैं कहता हूँ इन्हें सुकर भेज।...(आवारा० से) तुम्हारा क्या खियाल है जी ? (मरथा का आलिंगन करता हुआ) मैं अपनी जोरू को खूब चाहू हूँ। देखो, कैसा चाहू हूँ। अव्वल लम्बर है यह। मैं इसे किसी के साथ नहीं बदल सकता।

इगनाट—चलो, अच्छा हुआ। लो, बूढ़ी अम्मा, तुम भी पियो इस सुलह की खुसी में।

आवारा०—इशका मतलब है जीवन-शक्ती। अभी एक मनुश उदाश और मुँझलाया हुआ दीखता था। वही अब आनन्द और प्रेम दिखा रहा है। बूढ़ी दादी, मैं भी तुम्हें प्रेम करता हूँ और हर किशी को प्रेम करता हूँ। प्यारे भाइयों...(आतंकवादियों का गीत गाता है।)

माइकेल—इसे तो चढ़ गई अब पूरी तरह से। भूख में चढ़ेई जादे है।

दूसरा अंक

वही झोपड़ी—सुबह का समय—मरथा और एकुलीना—

माइकेल—सो रहा है।

मरथा—(कुल्हाड़ी लेकर) जाऊँ, थोड़ी-सी लकड़ी चीर लाऊँ।

एकुलीना—(बालटी उठाती हुई) कल तो, बहू, वह तेरी मारते-मारते बुरी हालियत कर देता। पर उस मरद ने तुझे बचा लिया। इस बखत दिखाई नहीं देता वह। कहीं चला गया है क्या? चला-ई गया दीखे है। (एक के बाद एक, दोनों जाती हैं।)

माइकेल—(जाग कर चारपाई से उतरता हुआ) अरे, भौत दिन निकल आया। सूरज कितना चढ़ गया। (जूता पहनता है।) वह तो मा के साथ पानी भरने गई होगी। ओःहो-ओ, सिर में बड़ा दरद हो रहा है। अब कभी नहीं पिऊँगा। (मूर्ति के सामने जाकर हाथ जोड़ता है और प्रार्थना करता है। फिर हाथ-मुँह धोता है।)

(मरथा लकड़ी लेकर आती है।)

मरथा—वह कलवाला मँगता गया क्या?

माइकेल—गया-ई होगा। दीखता तो नहीं।

मरथा—अच्छा हुआ, गया तो। बड़ा चलाक मालुम होवे था।

माइकेल—तेरी तो तरपदारीई करी थी।

मरथा—सो? (माइकेल अपना कोट पहनता है।)

मरथा—और वह चाय और बूरा? तुमने कहीं रख दिया है क्या?

माइकेल—मैंने तो तुझे-ई दिया था।

(एकुलीना बालटी भर-कर लाती है।)

मरथा—(एकुलीना से) चाय-बूरा तुमने कहीं रख दिया है क्या?

एकुलीना—मैं क्यों कहीं रखती। मैंने तो उसे देखा भी नहीं।

मरथा—रात में मैंने पुड़िया को ताख में रख दिया था।

एकुलीना—हाँ हाँ, व्हई रक्खा था। मुझे याद आ गई।

मरथा—तो गया कहाँ फिर ? (सब इधर-उधर ढूँढ़ते हैं।)

एकुलीना—हरे राम ! यह तो बड़ा अचरज हुआ।

(पड़ोसी का प्रवेश।)

पड़ोसी—अजी ओ माइकेल, राम राम ! जंगल को नहीं चलोगे क्या ?

माइकेल—चलूँगा क्यों नहीं ? अभी तैयार होऊँ हूँ। पर देखो तो, हम लोगों की कोई चीज़ खो गई है।

पड़ोसी—चीज खो गई है ? अरे ! क्या चीज थी ?

मरथा—अजी कल ये बजार से चाय-बूरे की पुड़िया बंधवा के लाए थे। सो मैंने ह्याँ ताख में रख दी थी। पर अब देखो तो उसका पता-ई नहीं है।

माइकेल—और हम यह पाप कर रहे हैं कि एक उचक्के पर सुभा करे हैं जो रात में हमारे ह्याँ सोया था।

पड़ोसी—कैसा था वह उचक्का ?

मरथा—कुछ-कुछ दुबला-सा। दाढ़ी-मूछें सफा थीं।

माइकेल—और उसका कोट सब तरप से फट रहा है।

पड़ोसी—घुंघराले बाल और मुड़ी हुई नाक भी है क्या ?

माइकेल—हाँ हाँ।

पड़ोसी—मैंने तो उसे अभी देखा है। मुझे तोज्जुब हो रहा था कि वह इतनी जल्दी-जल्दी क्यों जा रहा है।

माइकेल—हाँ तो, वही होगा, वही होगा। कहाँ था वह ?

पड़ोसी—अभी पुल के पार तो नहीं पहुँचा होगा।

माइकेल—(झटपट अपनी टोपी उठा कर बाहर जाता है। पड़ोसी पीछे-पीछे झपटता है।) मैं अभी उस बदमास को पकड़ के लाता हूँ। उसी ने चुराया है। उसी ने.....

मरथा—हे भगवान ! ऐसे भी लोग होवे हैं.. ऐसे भी लोग होवे हैं। उसी ने चुराया है.....

एकुलीना—और जो, मान लो, उसने ना चुराया होवे तो। बीस बरस हुए, एक दफे ऐसा हुआ था। लोगों ने एक आदमी को घोड़े की चोरी के सुभे में पकड़ लिया। निरी भीड़ इकट्ठी हो गई। कोई कुछ कहे, कोई कुछ कहे। एक ने कहा—"मैंने इस सकस को घोड़ा पकड़ते हुए देखा था।" दूसरा बोला—"मैंने उसे घोड़े को ले जाते हुए देखा था।" सब लोग जंगल में घोड़े को ढूँढने को गए और वहाँ उन्हें वोई सकस मिल गया। फिर क्या था ! सब के सब उस पर टूट पड़े—"तैने-ई घोड़ा चुराया है, तैने-ई घोड़ा चुराया है।" वह कुछ कहे तो उसकी सुनें नहीं और कहें—"इसे बकने दो, इसे बकने दो। लुगाइयाँ कह रही हैं कि इसी ने चुराया है।" तब उसने भी गुस्से में कुछ कहा। तो जार्ज ने उसके मुँह पे एक थप्पड़ मारा और घूंसा जमाया। यह देख के और सब लोग भी उस पर टूट पड़े और उसे खूब पीटा, और

उसे मार डाला। और फिर, मालुम है, क्या हुआ ? अगले-ई दिन असल चोर पकड़ा गया। वह आदमी तो जंगल में वैसे-ई लकड़ी बीनने चला गया था।

मरथा—अब, क्या जाने ! सायद हमारा सुभा झूंठा ही हो। वैसे तो इतना बुरा आदमी नहीं दीखे है। उसके दिन खराब हो गए हैं।

एकुलीना—हाँ, ये तो है-ई। और चलन में भी गिर गया। ऐसे आदमी अच्छे कम होते हैं।

मरथा—बाहर लोग तो चिल्ला रहे हैं। पकड़ लाए क्या उसे ?

(माइकेल, पड़ोसी, एक बुड्ढे आदमी तथा एक नवयुवक का आवारागर्द को ढकेल कर लाते हुए प्रवेश।)

माइकेल—पुड़िया को अपने हाथ में लिए हुए, जल्दी-जल्दी मरथा से) इसी के पास मिली, इसी के पास मिली। (आवारागर्द से) क्यों रे चोर . कुत्ते !

एकुलीना—ओ-हो, तो ये-ई निकला ! बिचारे ने कैसे सिर झुका रक्खा है।

मरथा—मैं जानूँ थी कल यह अपनी-ई बात कह रहा था कि सराब पीके जो कुछ सामने आए उसे-ई हथिया ले है।

आवारा०—देखो जी, मैं चोर नहीं हूँ। मैं छीन के लेता हूँ। मैं काम करता हूँ और मुझे भी जीकर रहना है। तुम क्या समझो। तुम्हें जो कुछ करना हो सो करो।

पड़ोसी—इसे मुखिया के पास ले जाओ...और नहीं तो पुलिस में ले चलो.. ...

आवारा०—मैं कहता तो हूँ कि जो चाहो शो करो। मैं डरता नहीं हूँ और अपने काम का प्रणाम भुगतने को तैयार हूँ। तुम लोग क्या शमझो। कुछ पढ़े-लिखे होते ता शमझते।

मरथा—(माइकेल से) क्यों जी, भगवान के ऊपर छोड़ के इसे जाने-ई दो ना। हमारी पुड़िया तो मिल ही गई। अब इसे जाने दो। हम क्यों पाप करें।

माइकेल—पाप करें! मुझे धरम सिखा रही है। तेरे बोले बगैर क्या किसी का काम नहीं चलता।

मरथा—तो चला-ई क्यों नहीं जाने देते?

माइकेल—चला-ई क्यों नहीं जाने देते! तू नहीं ही बोलेगी तो क्या होगा? चला-ई क्यों नहीं जाने देते! चला तो वह जाएगा ही। पर उसे एक-दो सीख की बात भी तो बता दूँ। (आवारागर्द से) अच्छा तो, सुनो सा'ब, सुनो हजूर, मैं क्या कहता हूँ। तुम्हारी हालियत इस बखत खराब है, पर फिर भी तुमने बड़ा बुरा काम करा है, भौत-ई बुरा काम करा है। कोई और सकस होता तो तुम्हारी पसलियें तोड़ देता और तम्हें पुलीस में ले जाता। पर मैं तुम से बस इतना कहता हूँ—तुमने बड़ा बुरा काम करा है—बड़ा-ई बुरा काम करा है। तुम्हारी इस बखत हालियत खराब है, इस मारे मैं तुम्हें कोई नुसकान नहीं पौंहचाना चहाता। चुप हो जाता है। और सब भी चुप हैं। फिर बड़ी

गंभीरता से कहना आरंभ करता है।) तुम जा सकते हो। भगवान तुम्हारा भला करे। अब आगे ऐसा मत करना। (अपनी पत्नी की ओर देख कर) और क्यों, तू मुझे धरम सिखा रही थी!

पड़ोसी—अरे नहीं, माइकेल। इसे छोड़ क्यों रहे हो, इसे छोड़ क्यों रहे हो! इससे तो यह और जादे चोरी करना सीखेगा।

माइकेल—(पुड़िया को हाथ में ही लिए हुए) मैं इसे छोड़ूँ या नहीं छोड़ूँ, यह मेरा काम है। तुम्हे क्या मतलब ? (अपनी पत्नी से) और तू मुझे धरम सिखाती थी! (ठहर कर एक बार पुड़िया की ओर देखता है, फिर अपनी पत्नी की ओर और पुनः आवारा की ओर। अन्त में निश्चय के साथ पुड़िया आवारागर्द को देता हुआ) लो, ले जाओ इसे। रस्ते में तुम्हारे काम आएगी। (अपनी पत्नी से) और तू समझती थी कि तू मुझे धरम सिखाएगी! (आवारागर्द से) जाओ अब, तुम से कह दिया। बस जाओ, सोच-विचार की जरूरत नहीं।

आवारा०—(पुड़िया लेकर कुछ देर चुप रहता है।) तुम सोचते होगे मैं कुछ शमझता नहीं। (उसकी आवाज़ काँपती है।) मैं अच्छी तरह शमझता हूँ। अगर तुमने मुझे कुत्ते की तरह पीटा होता तो शहना इतना कठिन नहीं था। क्या मैं नहीं देखता कि मैं कितना नीच हूँ। मैं कमीना हूँ, पापी हूँ, बहुत बुरा हूँ। भगवान के नाम पर मुझे छमा करो। (सिसक कर रोने लगता है और पुड़िया को चारपाई पर फेंक कर जल्दी से बाहर निकल जाता है।)

मरथा—चलो, अच्छा हुआ कि चाय-बूरा नहीं ले गया नहीं तो आज कुछ पीने ई-को नहीं मिलता ।

माइकेल—अरे ! ब-अस ! और तू तो मुझे धरम सिख रही थी !

पड़ोसी—आहा ! बिचारा कैसा रोता था ।

एकुलीना—भगवान ने उसे भी आदमी ही बनाया है ।❀

❀ टालस्टाय के Cause of it All का अनुवाद ।

प्रथम खण्ड

रूपक के पात्र

एक किसान

किसान की पत्नी

किसान की माता

किसान का दादा

किसान की छोटी लड़की

एक पड़ोसी

गाँव के चार प्रधान—पंच

स्त्रियाँ, वृद्धाएँ, लड़कियाँ और बालक

शैतानों का सरदार

सरदार का मुंशी

पिशाचों का जमादार

प्रहरी और ड्योढ़ीवान

अन्य पिशाच।

किसान—(हल जोतते-जोतते आकाश की तरफ़ देख कर) दोपहर हो गया। बैलों के जोत खोलने का वक्त आ गया। हीः चल, चल। थक गए बेचारे बैल भी। बस एक चक्कर और, फिर इसके बाद खाना-वाना खाऊँगा। मैंने अच्छा ही किया जो एक रोटी बाँधता लाया। अब घर जाकर क्या करूँगा? यहीं कुएँ पर बैठ कर टुकड़ा कुतुर लूँगा और ज़रा देर आराम कर लूंगा। बैल इतने घास चरते रहेंगे। (जमुहाई लेता है।) ईश्वर, तेरी माया। (पिशाच आकर एक झाड़ी के नीचे छिप जाता है।)

पिशाच—देखा, कैसा भला आदमी बना है। हर वक्त "ईश्वर, ईश्वर" ही पुकारता रहता है। अच्छा दोस्त, ठहरो ज़रा। अभी थोड़ी ही देर में तुम शैतान को याद न करने लगो तो बात ही क्या। मैं इसकी रोटी छिपाए लेता हूँ। फिर जब यह उसे लेने आएगा और जगह पर न पा कर इधर-उधर ढूंढेगा और पेट में बिल्लियाँ कूदेंगी तो बचा अपने आप झीखेंगे और गालियाँ बकेंगे। फिर तो शैतान ही याद आएगा। (रोटी उठाकर फिर झाड़ी के पीछे बैठ जाता है और किसान की कार्रवाई देखता है।)

किसान—(बैल खोलता हुआ) सीताराम! राधेश्याम! शुकर है परमात्मा का! (बैल को खोल कर उस तरफ़ जाता है जहाँ उसकी बंडी रक्खी है।) बड़ी भूख लगी है। रोटी भी उसने खूब ही मोटी

बना के दी थी, पर देखना जो मैं उसमें से जरा सी भी छोड़ूँ तो। (बंडी के पास पहुँच कर।) अरे, यह क्या! रोटी का तो पता भी नहीं। कहाँ छू-मन्तर हो गई? (बंडी को अच्छी तरह झाड़ कर देखता है।)

पिशाच—बहुत ठीक, बेटा! ढूंढ़ो, खूब ढूंढ़ो। मैंने उसे अच्छी तरह संभाल कर रख दिया है। (रोटी के ऊपर बैठ जाता है।)

किसान—(हल हटाकर फिर अपनी बंडी झाड़ता है) यह तो बड़े अचरज की बात है। बड़े भारी अचरज की! यहाँ चिड़िया तक तो कोई आई नहीं और रोटी गायब हो गई! और जो चिड़ियों ने ही खाई होती तो उसके कुछ टुकड़े तो होते। पर यहाँ तो एक कन भी नहीं। यहाँ कोई भी नहीं आया और फिर भी रोटी को कोई लेगया।

पिशाच—हाँ हाँ, बस बस! अभी करोगे तुम शैतान को याद, बच्चू! (उठकर देखता है।)

किसान—खैर, कोई ले गया सो ले गया। अब कर ही क्या सकूँ हूँ? जैसी मर्जी परमात्मा की। कोई भूख से मर तो जाऊँगा ही नहीं। जो ले गया है उसी का भला हो।

पिशाच—(गुस्से से थूकता है।) धत्तेरी निकम्मे किसान की! अब भी परमात्मा को ही याद करता है! गालियाँ देने की जगह कहता है कि जो ले गया है उसका भला हो! भला ऐसे आदमी के साथ कोई क्या कर सकता है?

(किसान ईश्वर को धन्यवाद देता हुआ लेट जाता है और जमुहाई ले कर सो जाता है।)

पिशाच—(झाड़ी से निकल कर) मोटे आदमियों के लिए बातें मारना बड़ा आसान है। सरदार बराबर कहते रहते हैं—"तुम काफ़ी किसान नरक में नहीं लाते। हर रोज़ कितने बनिए-व्यवसायी, कितने भले आदमी और दूसरे पेशों के लोग यहाँ गिरते रहते हैं, पर किसान बहुत ही कम आते हैं।" अब भला इस आदमी को किस तरह ढंग पर लाया जाए? उसे क़ाबू में करने का कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता। क्या अभी-अभी मैंने उसकी तमाम रोटी नहीं चुरा के रख ली? इससे ज्यादा और मैं करता ही क्या? फिर भी यह गालियाँ नहीं बकता, क़समें नहीं खाता। मैं तो परेशान हूँ कि क्या करूँ। जो कुछ हाल है सो सरदार से जाकर कहे देता हूँ। (भूमि के भीतर घुस कर अदृश्य हो जाता है।)

[२]

स्थान नरक। शैतानों का सरदार सब से ऊँचे स्थान पर आसीन है। उसका मुँशी ज़रा नीची जगह पर अपने सामने एक मेज और लिखने का सामान रक्खे हुए बैठा है। हर तरफ़ पहरेदार मौजूद हैं। दाहनी ओर भिन्न-भिन्न सूरतों वाले पाँच पिशाच खड़े हैं। बाईं तरफ़ दरवाज़े के पास ड्योढ़ीवान है। पिशाचों का जमादार सरदार के सामने खड़ा है।

जमादार—इन तीन साल की तमाम लूट में २२००००५ आदमी आए हैं। वे इस समय मेरे अधिकार में हैं।

सरदार—यह तादाद बुरी नहीं है। अच्छा, जाओ।

(जमादार दाहनी ओर चला जाता है।)

सरदार—मुंशीजी, क्या अभी बहुत काम बाक़ी रह गया है? हम तो बिलकुल थक गए। कौन-कौन अपनी कैफ़ियत बयान कर चुके और कौन-कौन बाक़ी रहे हैं?

मुंशी—(उँगलियों पर गिन कर बतलाता है और दाहनी ओर खड़े हुए लोगों की ओर क्रम-क्रम से संकेत करता जाता है। मुंशी के बताने पर पिशाच बारी-बारी से झुक कर सलाम करते हैं।) भले आदमियों के पिशाच की कैफ़ियत हो चुकी। इसने कुल १८३६ भले आदमी फँसाए हैं। तिजारतियों के पिशाच की कैफ़ियत में ९६४३ मनुष्य हैं। दफ़्तरों के कर्मचारियों में से ३४२३ फँसे हैं। उनके पिशाच की कैफ़ियत अभी समाप्त हुई है। स्त्रियों का पिशाच भी अभी अपनी कफ़ियत दे कर गया है। १८६३१५ विवाहित स्त्रियाँ और १७४३८ कुमारियाँ आई हैं। अब केवल दो पिशाच रहे हैं—वकीलोंवाला और किसानोंवाला। कुल सूची में २२०००५ आदमी हैं।

सरदार—अच्छा तो, इस तमाम काम को आज समाप्त कर दिया जाए। (ड्योढ़ीवान से) आने दो।

(वकीलोंवाला पिशाच आता है और सरदार को सलाम करता है।)

सरदार—हाँ, कहो, तुम्हारा काम कैसा रहा?

वकीलोंवाला पिशाच—(हँसता हुआ और हाथों को रगड़ कर) मेरे काम सभी सधते, कज्जल से सुफ़ेद रहते। मेरी लूट तो ऐसे

जोर की है कि जब दुनिया बनी तब से अभी तक मुझे किसी भी ऐसी बात की याद नहीं जिसमें इतनी कामयाबी हुई हो।

सरदार—क्यों, तुम्हारी लूट की तादाद कितनी है? कितने आदमी गिरफ्तार हुए हैं?

व० पि०—नहीं, तादाद तो ऐसी बहुत नहीं है—सिर्फ़ १३५० आदमी हैं। लेकिन वे ऐसे लोग हैं कि, वाह! ख़ुद शैतान भी उनसे शरमा जाए। वे हमसे भी ज्यादा खूबी के साथ आदमियों को फँसा सकते हैं! मैंने उनमें एक नया रिवाज जारी किया है।

सरदार—वह क्या है? कहो।

व० पि०—देखो, पहले तो वकील जजों के सामने रहा करते थे और वहीं लोगों को धोखा दिया करते थे। अब मैंने जजों से अलग बाहर भी उनके काम करने का इंतज़ाम कर दिया है। जो कोई उन्हे सब से ज्यादा रुपया देता है उसी के लिए वे पैरवी करते हैं और उसके लिए इतनी मेहनत करते है कि कोई मामला न होने पर भी वे एक-न-एक मामला गढ़ ही लेते हैं। अदालत के कारिन्दों से मिल कर लोगों को वे हम से भी ज्यादा होशियारी से फँसाते हैं।

सरदार—बहुत ठीक। मैं उनको ख़ुद देखूँगा। तुम जा सकते हो।

(वकीलोंवाला पिशाच दाहनी ओर चला जाता है।)

सरदार—(ड्योढ़ीवान से) आखिरी पिशाच को आने दो।

(किसानोंवाला पिशाच हाथ में रोटी लिए हुए प्रवेश करता है और ज़मीन तक झुक कर सलाम करता है ।)

कि० पि०—मैं अब इस जगह काम नहीं कर सकता। मुझे कोई दूसरा काम दिया जाए।

सरदार—कौन-सा दूसरा काम ? क्या बड़बड़ करता है ? उठ कर होश की बातें कर और अपनी कैफ़ियत सुना। कितने किसान इस हक़े में फँसाए ?

कि० पि०—कितने बताऊँ ! एक भी किसान हाथ नहीं आया।

सरदार—क्या ? एक भी नहीं ! क्या कह रहा है तू ! फिर करता क्या रहा ? इतने दिन कहाँ सुस्ती की ?

कि० पि०—(भिनभिनाता हुआ-सा) मैंने सुस्ती नहीं की। मैंने अपनी एक-एक नस का ज़ोर कोशिश में लगा दिया। पर अब मैं कुछ नहीं कर सकता। देखते नहीं, मैंने जाकर उसकी आँखों के सामने से उसकी तमाम रोटी चुरा ली और वह मुझे गाली देने के बजाए कहने लगा कि लेजानेवाले का ही भला हो।

सरदार—क्या...क्या...क्या भिनभिना रहा है ? जाकर नाक साफ़ कर और फिर होश में आकर हाल कह। तेरी बात का सिर-पैर तक तो समझ में आता ही नहीं।

कि० पि०—क्यों, सुनो न—एक किसान हल जोत रहा था। वह एक ही रोटी लाया था और उसके पास खाने को और कुछ नहीं था। मैंने उसकी रोटी चुरा ली। क़ायदे से उसे मुझको

गाली देनी चाहिए थी। पर उसने ऐसा नहीं किया। वह कहने लगा, "लेजानेवाले का उसे खाकर भला हो।" मैं अपने साथ वह रोटी भी लेता आया हूँ। यह देखो।

सरदार—अच्छा, और बाकी किसानों के बारे में क्या बात है ?

कि० पि०—वे सब एक से हैं। मैं किसी को भी नहीं फँसा सका।

सरदार—तो तुझे खाली हाथ हमारे सामने आने की हिम्मत ही कैसे हुई ? और, गोया कि इतना ही कुसूर काफ़ी नहीं था, इसलिए तू अपने साथ यह सड़ा हुआ बदबूदार टुकड़ा भी उठाता लाया। क्या तू हमारा मज़ाक बनाना चाहता है ? तू चाहता है कि नरक में रह कर मुफ्त की रोटी खाता रहूँ। दूसरे लोग खूब कोशिश करते हैं और जी-तोड़ मेहनत करते हैं। इनमें से (पिशाचों की ओर संकेत करके) हर एक ने—किसी ने १००००, किसी ने २००००, और किसी ने २००००० तक आदमी दिए हैं। और एक तू है जो खाली हाथ आकर अपना राग गा रहा है। बातें बनाता है पर काम नहीं किया जाता। अच्छा ठहर ज़रा, मैं तुझे दो एक सबक पढ़ा दूँ।

कि० पि०—लेकिन मुझे सज़ा देने से पहिले एक बात सुन लो। इन पिशाचों का काम तो बड़ा आसान है जिन्हें भले आदमियों, सौदागरों या औरतों से भुगतना पड़ता है। इनका बड़ा सीधा रास्ता है। एक भले आदमी को कोई खिताब या जागीर

दिखाओ और वह तुम्हारे इशारे पर नाचने लगेगा। ऐसे ही सौदागार की भी बात है। ज़रा-सा रुपया दिखा कर उसका लालच उभार दो और उसकी नाक पकड़ कर हाँक लो। वही हाल औरतों का भी है। उन्हें बढ़िया-बढ़िया चीज़ें दो, मिठाइयाँ खिलाओ और उनके साथ जो चाहो सो कर लो। पर ये किसान! इन्हें तो अपने हल और बैलों से ही फ़ुरसत नहीं है। जब कि वह सुबह से लेकर शाम तक—कभी-कभी तो रात तक—बराबर मेहनत करता रहता है और अपने ईश्वर का नाम लिए बिना कभी कोई काम ही नहीं करता, तो कोई किस तरह उसे क़ाबू में लाए। सरदार, मुझे इन किसानों के झगड़े से छुट्टी दो। इनकी वजह से मैं परेशान होते-होते मर तक तो गया, पर बदले में मिला तुम्हारा गुस्सा।

सरदार—चालाकी की बातें करता है, सुस्त कहीं का। तुझे दूसरों की बातों से मतलब क्या? अगर ये सौदागरों, भले आदमियों और औरतों को फँसा सके तो सिर्फ़ इसी वजह से कि ये उनको पटाना जानते थे और उनके लिए नए-नए जाल रच सकते थे। वकीलोंवाले ने तो एक बिलकुल ही नया तरीक़ा निकाला है। तुझे भी इसी तरह कोई तरकीब सोचनी पड़ेगी। तू एक टुकड़ा चुरा लाया है और उसी पर शेखी बघार रहा है, मानो कोई बड़ा भारी काम किया है। देखो, उन किसानों को चारों तरफ़ नए-नए फंदों से घेर दो। फिर वे किसी-न-किसी में फँस ही जाएँगे। तुम्हारे इस तरह सुस्ती से

घूमते रहने और उनको अपने काम में ख़ुदमुख़्तार रहने देने से ही तो वे ज़बर्दस्त हो गए हैं। अब वे अपने आख़िरी बचे हुए टुकड़े को भी परवाह नहीं करते। अगर वे इसी तरह करने लगेंगे और अपनी औरतों को भी यही सिखाएँगे तो हमारे क़ाबू से बिलकुल निकल जाएँगे। कोई बात जल्द सोच कर निकालो। जैसे हो वैसे अपना चलन बदलो और ठीक-ठीक काम करो।

कि० पि०—मेरी समझ में नहीं आता कि मैं किस तरह उस काम को करूँ। मुझे अब जाने दो। मुझसे यह काम नहीं हो सकता।

सरदार—काम नहीं हो सकता! तो तू यह समझता है क्या कि तेरा काम हम करेंगे?

कि० पि०—किसी और को दे दो। पर मेरी ताकत के तो बाहर है यह काम।

सरदार—अच्छा, ठहर फिर! पहरेदार, बेत ला। इसके कोड़े तो लगा।

(पहरेदार पिशाच को पकड़ कर उसके कोड़े लगाता है।)

कि० पि०—ओह, ओह! मरा! मरा!

सरदार—क्यों, आई कोई तरकीब समझ में या अभी नहीं?

कि० पि०—ओह, मरा! मुझसे नहीं सोची जाती। नहीं सोची जाती।

सरदार—मारो—और मारो। (पहरेदार खूब मारते हैं।) क्यों, सोची तरकीब?

कि० पि०—हाँ, हाँ, सोचता हूँ—ठहरो, ज़रा दम लेने दो। (सरदार के इशारे से पहरेदार मारना बन्द कर देते हैं) ओफ़। मर गया। आह।

सरदार—बतलाता है क्या तरकीब सोची या अभी और कोड़े खाएगा ?

कि० पि०—मैंने एक बड़ी चालाकी की बात सोची है, सरदार, जिससे वे सब अब मेरे बस में आ जाएँगे। बस, अब मैं उस किसान के यहाँ मज़दूर बन कर काम करूँगा। फिर देखूँ, कैसे बचता है। लेकिन मैं पहले ही से अपनी तरकीब तुम्हें नहीं बताऊँगा।

सरदार—अच्छा खैर, न सही। मगर याद रख, अगर तीन साल के भीतर तूने इस गन्दे टुकड़े का एवज़ न चुकाया तो मैं तुझे जिन्दा खाल के अन्दर सिलवा दूँगा।

कि० पि०—तुम यकीन रक्खो। तीन साल में वे सब मेरे गुलाम हो जाएँगे।

सरदार—अच्छी बात है। तीन साल बीतने पर मैं खुद आऊँगा और देखूँगा।

[३]

खलिहान—गाड़ियाँ नाज से भरीं हैं—मज़दूर के वेश में पिशाच गाड़ी से नाज उतार रहा है और किसान उसे तोल-तोल कर घर में ले जा रहा है।

मज़दूर—तेतीस।

किसान—कितने मन हुए।

मज़दूर—(खलिहान के द्वार पर बनाए हुए कुछ चिन्हों को देख कर) ८३२ मन गए। नौवें सैकड़े का यह तेंतीसवाँ मन है।

किसान—सब नाज भीतर नहीं रक्खा जा सकता। खलिहान भरने पे आ गया है।

मज़दूर—नाज को इकसार करके अच्छी तरह दबा-दबा कर रक्खो।

किसान—अच्छी बात है। तेरा ही कहना करूँगा। (तुला हुआ नाज लेकर जाता है।)

मज़दूर—(एकान्त देख कर अपनी टोपी उतारता है। उसके सींग दिखाई देते हैं।) अब तो वह कुछ देर में ही लौटेगा। इतने में अपने सींगों को ही ठीक कर लूँ। (सींग बढ़ जाते हैं।) और ज़रा जूते भी खोल डालूँ। उसके सामने तो मैं ऐसा कर ही नहीं पाता हूँ। (जूते निकालता है और उसके खुर दिखाई देते हैं। चौखट पर बैठ जाता है।) यह तीसरा साल है। शुमारी का वक़्त भी क़रीब है। नाज इतना हुआ है कि उसके रखने तक की जगह नहीं है। अब उसे सिर्फ़ एक बात और सिखानी रह गई है। फिर सरदार आकर स्वयं देख जाए। मेरे पास उसको दिखाने लायक़ वाकई कोई चीज़ होगी। वह मुझे उस टुकड़े की बात के लिए माफ़ कर देगा।

(पड़ोसी आता है—मज़दूर अपने सींग और खुर छिपा लेता है।)

पड़ोसी—भैया, राम राम !

मज़दूर—रामराम, भाई।

पड़ोसी—मालिक कहाँ है ?

मज़दूर—वह नाज को इकसार करने गए हैं। वैसे तो यह सब का सब भीतर नहीं रक्खा जा सकता।

पड़ोसी—सच है, भैया ! तुम्हारे मालिक का भी कैसा भाग जागा है। रखने तक को भी जगह नहीं है। इन दो सालों में तुम्हारे मालिक की जैसी फ़सलें हुई है उन्हें देखके हर किसी को अचरज होता है। जैसे किसी ने पहले से उसे बता दिया हो कि क्या होगा। पिछला साल सूखा रहा तो उसने दलदल में ही बो दिया। दूसरे लोगों के यहाँ ज़रा भी फ़सल नहीं हुई, पर तुम्हारी ओखलिएँ सदा नाज की बालों से घिरी रहती थीं। और अबके—अबके तो गरमियों में ही मेंह बरस गया। सब का नाज तो सड़ गया पर उसे अकिल समाई तो जाके टीले के ऊपर बो आया और उसकी ख़ूब अच्छी फ़सल हुई। कैसा नाज है ! देखो तो जैसे मोती धरे हों।

(कुछ दाने उठा कर उन्हें हाथ में तोलता है और चबाता है।)

किसान—(ख़ाली डलिया लिए हुए आता है।) ओहो, पड़ोसी आए हैं। कहो, अच्छे तो हो ?

पड़ोसी—हाँ भैया, राम राम। मैं तुम्हारे आदमी से जिकर कर रहा था कि तुमने बोने के लिए अपनी अकिल से कैसी अच्छी जगह ढूंढ़ निकाली। हर कोई तुमसे इरखा करता है। कैसे

ढेर हैं—कैसे ढेर है नाज के तुम्हारे ! दस बरस में भी नहीं खा सकोगे इन्हें ।

किसान—इसका तमाम जस इसी नज्जन (मज़दूर की ओर संकेत करता है) को है । यह सब इसी का भाग है । परसाल मैंने इसे हल चलाने को भेजा, और यह हल लेके गया कहाँ ?—दलदल में । मैंने इसे तिकतिकाया, बुरा-भला कहा, पर यह वहीं बोने के लिए मुझसे हठ करता रहा । खैर, मैंने इसी का कहना करा, और उसका फल देख लो कैसा निकला । इस साल फिर इसने ऐसी ही बात सोची और टीले के ऊपर बो आया ।

पड़ोसी—और क्या, जैसे इसे पहले से मालूम हो गया हो कि कैसा मौसिम रहेगा । सच भैया, तुम्हारे यहाँ भौत नाज हुआ है—भौत ही तो हुआ है । इसमें कोई झूठ नहीं । (चुप हो जाता है । फिर ज़रा देर में) हाँ, मैं तुम्हारे पास थोड़ी-सी राई माँगने आया था । हमारे यहाँ सब राई चुक गई है । मैं तुम्हें अगले साल लौटा दूँगा ।

किसान—हाँ, हाँ, भाई । जितनी जी चाहे ले लो ।

मज़दूर—(किसान को धीरे से इशारा करता हुआ) मत दो ।

किसान—चुप , जा तू । ले लो भाई ।

पड़ोसी—मैं अपनी बोरी ले आऊँ तो । (जाता है ।)

मज़दूर—(स्वगत) अपनी पुरानी आदतों को अभी वैसे ही पकड़े हुए है । अब भी दिए जाता है । अभी हमेशा मेरे कहने पर

नहीं चलता। मगर ठहरो, अब जल्दी ही इसका देना बन्द हो जाएगा।

किसान—(देहली पर बैठता हुआ) किसी भले आदमी को कुछ देने में हरज ही क्या है ?

मजदूर—देना और बात है और वापिस पाना और। तुम नहीं जानते कि उधार देना तो किसी चीज़ को पहाड़ पर से नीचे लुढ़काने की तरह है, पर उधार वसूल करना उसे पहाड़ के ऊपर खींचने की तरह मुश्किल है। यही बात पुराने लोग कहते हैं।

किसान—अरे तो, फिकर क्या है। हमारे यहाँ भौतेरा नाज है।

मजदूर—तो इससे क्या हुआ ?

किसान—हमारे पास जितना नाज है उतना तो दो बरस में भी नहीं चुकेगा। हम इतने नाज का करेंगे ही क्या ?

मजदूर—करेंगे ही क्या। मैं तुम्हें इसकी ऐसी चीज़ बना कर दे सकता हूँ कि तमाम ज़िन्दगी मज़ा उड़ाओ।

किसान—ऐसी क्या चीज़ बनाएगा भला ?

मजदूर—एक पीने की चीज़। ऐसी कि कमज़ोरी के वक्त तुम्हें ताक़त दे, भूख के वक्त तुम्हें तसल्ली पहुँचाए, बेचैनी के वक्त नींद लाए, उदासी के वक्त खुशी पहुँचाए और जिस वक्त तुम्हें डर मालूम होता हो उस वक्त तुम्हें बहादुर बनाए। ऐसी चीज़ मैं तैयार कर सकता हूँ इससे।

किसान—जा, जा। बातें बना रहा है। ऐसी चीज़ बनाएगा भला यह।

मज़दूर—बातें तो बना ही रहा हूँ! क्यों, ऐसे ही मैं उस वक्त भी बातें बनाता था जब मैंने तुम से दलदल में और फिर टीले पर बोने को कहा था? तब तुम मेरा यकीन नहीं करते थे, लेकिन अब तुम्हें मालूम हो गया। ऐसे ही तुम्हें इस बार भी मालूम हो जाएगा।

किसान—पर तू इसे बनाएगा काहे से?

मज़दूर—क्यों, इसी अनाज से तो।

किसान—पर इसमें कोई पाप तो नहीं है?

मज़दूर—लो सुनो। पाप क्यों होने लगा। हर चीज़ आदमी को मज़ा करने के लिए दी गई है।

किसान—अच्छा तो नज्जन, यह तो बता कि यह अकिल की बातें तैने सीखी कहाँ से। देखने में तो तू कुछ ऐसा-ही-सा लगे है, और मेहनती भी है। इन दो बरसों में मैंने तुझे कभी अपने जूते उतारते नहीं देखा। फिर भी तू दुनिया भर की बातें जानता है। कहाँ से सीखीं तैने ये बातें?

मज़दूर—मैं बहुत इधर-उधर रहा हूँ।

किसान—तो तू यह कहता है कि इससे तागद आती है?

मज़दूर—कुछ रोज़ ठहरो न। खुद ही पीकर इसके असर को देख लेना।

किसान—और वह बनेगी कैसे?

मज़दूर—एक बार जान लेने पर फिर बनाना कोई मुश्किल नहीं है। सिर्फ़ एक ताँबे के और दो लोहे के बरतनों की ज़रूरत होगी।

किसान—और, क्यों रे, उसका सवाद भी अच्छा होगा?

मज़दूर—ऐसा बढ़िया जैसे अमरित। एक बार चख लेने पर फिर तुम उसे कभी नहीं छोड़ सकोगे।

किसान—ऐसी बात है? अच्छा तो मैं अपने पड़ोसी के यहाँ जाऊँगा। उसके पास ताँबे का एक बरतन था। करेंगे अजमाइस फिर।

[४]

एक खलिहान—बीच में तांबे का एक बरतन ढका हुआ आग पर रक्खा है—वहीं एक दूसरा बरतन भी रक्खा है जिसमें नीचे की तरफ़ एक टोंटी लगी हुई है।

मज़दूर—(एक कुल्हड़ टोंटी के नीचे लगाता है और शराब पीता है।) लो मालिक, यह तैयार हो गई।

किसान—(उकड़ूँ बैठ कर देखता हुआ) कैसी अजीब बात है। यह इसमें से पानी-सा कैसा निकल रहा है? तू इस पानी को क्यों निकाल रहा है रे?

मज़दूर—यह पानी नहीं है। यही वह चीज़ है।

किसान—अच्छा? इतनी सफ़ेद? मैं तो समझता था कि नाज के ही रंग की होगी। यह तो बिलकुल पानी की तरह है।

मज़दूर—लेकिन ज़रा इसे सूंघ कर तो देखो।

किसान—वाह ! कैसी खुसबू है ! देखूं ज़रा मुँह के भीतर यह कैसी मालूम होती है। चखा तो सही जरा।

(मज़दूर के हाथ से कुल्हड़ लेना चाहता है)

मज़दूर—देखो, तुम गिरा दोगे। (टोंटी घुमा कर कुल्हड़ भरता है और पी जाने के बाद होठ चाटता है।) ठीक हो गई। लो अब पीओ। (दूसरा कुल्हड़ भर कर किसान को देता है।)

किसान—(पहले चखता है, फिर अधिकाधिक पीकर कुल्हड़ ख़त्म कर देता है और उसे लौटा देता है।) जरा-सी और दे। इतनी से क्या सबाद मालूम हो सके है।

मज़दूर—(हँस कर) मालूम होता है तुम्हें पसन्द आ गई। (और देता है।)

किसान—हूँ-ऊँ, अब के आया है मजा। यह तो घरवाली को भी पिलाना चाहिए। अरी ओ अरी, यहाँ तो आ। ले यह तैयार हो गई। चल जल्दी से।

(पत्नी एक कन्या को लिए हुए आती है।)

पत्नी—क्या है ? यह इतनी गड़बड़ काहे कर रक्खी है ?

किसान—ले जरा चख के तो देख कि हमने क्या बनाया है। (कुल्हड़ हाथ में देता है।) सूंघ के देख कैसी खुसबू है।

पत्नी—(सूंघ कर) ओ मैया-आ !

किसान—इसे पी-ई।

पत्नी—पर सायद इससे कुछ नुसकान तो न हो।

किसान—निरी बेवकूफ ही है री। अरी इसे पी के तो देख।

पत्नी—(पी कर) हाँ, है तो अच्छी।

किसान—अच्छी तो है ही। (कुछ-कुछ नशे में) और तू जरा देखना कि होता क्या है। नज्जन कहता है कि इससे थकान जाती रहती है, जबान बुड्ढे हो जाते हैं—अरे वह, बुड्ढे जबान हो जाते हैं। अब देख न, मैंने दो ही कुल्हड़ पिये हैं और मेरी तमाम हड्डियाँ जैसे खुल-सी गई हों। (अकड़ता हुआ) देखा तैने ? अरी जरा रुक जा। जब हम और तू रोज इसे पिया करेंगे तो फिर जबान हो जाएंगे। अरी मेरी रानी-ई। (आलिंगन करता है।)

पत्नी—(हटाती हुई) चलो हटो। तुम तो इससे निरे पागल ही हो गए।

किसान—और तू कहती थी कि मैं और नज्जन सारा नाज लुटाए डाले हैं। पर अब देख, कैसी अच्छी चीज हमने इस नाज से बनाई है। है न अच्छी, बोल।

पत्नी—सच तो है। जब इससे बुड्ढे जबान हो जावे हैं तो इसके अच्छी होने में क्या सक है। देख लो, तुम्हें इसने कैसा खुस बना दिया और मुझे भी कुछ-कुछ खुसी-सी मालूम हो रही है। अच्छा तो फिर आओ गीत गाएँ...हा...हा...(गाती है।)

किसान—अब हम सब जबान हो जाएँगे—सब के सब जबान...

पत्नी—मैं सासू को बुला लाऊँ। वह सदा उदास और बड़-

बड़ाती रहे हैं। उन्हें फिर नया करना चाहिए। जबान होके वह भलीमानस हो जाएँगी।

किसान—(नशे में) हाँ हाँ, जा, बुला ला मा को...और दादा को भी। अरी ओ लौंडिया, जा दौड़ के अपनी दादी और दादा को तो बुला ला। कहियो कि चूल्हे के पास बैठे क्या ताप रहे हो, चलो तुम्हें जबान बना दें। जा, जल्दी जा। देख...बन, टू, थिरी...हाँ ठीक जैसे बन्दूक में से गोली छूट गई हो (लड़की भाग कर जाती है। अपनी स्त्री से) आ इतने एक कुल्हड़ और पिएँ।

(मज़दूर दोनों को एक एक कुल्हड़ भर कर देता है।)

किसान—(पी कर) पहले तो चुटिया में जबानी आई, फिर जीभ में, उसके बाद हाथों में। और अब पैरों में आ रही है। मालुम होता है मेरे पैर जबान हो रहे हैं—आप ही आप आगे को चलते हैं।

(नाचने लगता है।)

पत्नी—तू सचमुच बड़ा हुसियार है नज्जन। अच्छा, तू ढोलकी बजा और हम गावें।

(मज़दूर ढोलक लेकर बजाने लगता है। किसान और उसकी पत्नी गाते हैं।)

मजदूर—(दोनों के आगे बजा-बजा कर उनकी ओर देखता और आंखें मटकाता है।) तुम्हें उस टुकड़े का बदला देना पड़ेगा। और तुम अभी भी दे रहे हो, मेरे दोस्तो! अब थोड़े-ही यह इनसे छूट सकती है। सरदार कभी भी आकर देख ले।

(एक तन्दुरुस्त वृद्धा स्त्री और सुफेद बालोंवाले एक वृद्ध किसान का प्रवेश ।)

वृद्ध किसान—यह सब हो क्या रहा है ? क्या तुम सब पागल हो गए हो ? और लोग तो काम...कर रहे हैं और तुम्हें नाचना सूझा है !

पत्नी—(नाचती और ताली बजाती है) ओ...हो.. हो...हो... (गाती है ।)

करती पाप य' मैं जानूं, पर बेपाप फकत भगवानूं ।

वृद्धा—क्यों री चुड़ैल, चौका अभी तक धुला भी नहीं और तू यहां नाच रही है ।

किसान—ठहर ठहर मा, देख तो हमने कैसा काम करा है । हम बुड्ढों को भी जवान बना सकते हैं । ले जरा इसे पी के देख ।

वृद्धा—कुएँ में भौतेरा पानी भरा पड़ा है । (सूँघ कर) पर तैंने इसमें क्या डाल दिया है । मेरा तो —अरे राम—कैसी खसबोई है...

किसान— इसे पी तो सही ।

वृद्धा—(चख कर) ओ मैया ! इससे कहीं मर तो ना जाऊँगी ?

पत्नी—अजी, और जी जाओगी । फिर जवान हो जाओगी ।

वृद्धा—बक काहे को रही है ? (पीती है ।) पर है तो अच्छी । रोज जो पानी पिया करे हैं उससे अच्छी है । लो चाचाजी, तुम भी पियो । (वृद्ध किसान को देती है ।)

(वृद्ध बैठ जाता है और सिर हिलाता है ।)

मजदूर—खैर, उन्हें रहने दो। पर दादी, तुम एक कुल्हड़ और लो। (देता है।)

वृद्धा—भौत कहीं नुकसान न करे। अरे यह तो जलन-सी पड़ रही है...पर, फिर भी है बड़ी अच्छी।

पत्नी—पिओ तो। फिर तुम्हें यह नसों में दौड़ती हुई मालुम होगी। (वृद्धा पीती है।) क्यों, अभी पैरों तक पहुँची या नहीं ?

वृद्धा—सच्ची, यह तो दौड़ती-सी लगे है। अब यह यहाँ मालुम हो रही है। और इससे कैसा हलकापन—सा लगने लगा। लाओ, जरा सी और दो। (फिर पीती है।) वाह, अबके तो मैं बिलकुल हो जवान हो गई।

किसान—मैंने तुझ से कहा था कि नहीं।

वृद्ध—हाय, मेरा बुड्ढा न हुआ। एक दफे और देख लेता कि मैं जवानी में कैसी थी।

(मजदूर बजाता है। किसान और पत्नी नाचते हैं।)

वृद्धा—(बीच में आकर) इसे ही नाचना कहे हैं क्या ? हटो, देखो, मैं बताऊं। (नाचती है।) यों नाचते हैं...फिर यों, इस तरह, समझे ?

(वृद्ध किसान बरतन के पास जाकर टोंटी घुमा देता है और शराब ज़मीन पर गिर कर बहने लगती है।)

किसान—(वृद्ध की ओर झपटता है) यह क्या कर दिया, क्यों रे, दादा के बच्चे ! ऐसी अच्छी चीज बहा-दी ! जा यहाँ

से खूसट ! (उसे ढकेल कर टोंटी के नीचे कुल्हड़ लगा देता है । ।) लेके तमाम बरतन खाली कर दिया ।

वृद्ध किसान—यह बुरी बात है, अच्छी नहीं है । परमात्मा ने अच्छी फ़सल इसलिए दी थी कि आप खाते और दूसरों को खिलाते । पर तुमने उससे यह राच्छसों के पीने की चीज़ बनाई । इसमें कोई नेकी नहीं है । छोड़ दो इसे, नहीं तो खुद भी मरोगे और दूसरों को भी मारोगे । यह आग है आग, तुम्हे सब को जला देगी । (चूल्हे से एक जलता हुआ लकड़ी का टुकड़ा निकाल कर गिरी हुई शराब में लगाता है । शराब जल उठती है । सब लोग भय के साथ देखने लगते हैं ।)

[५]

झोपड़ी का भीतरी हिस्सा—मज़दूर अकेला—उसके सींग और खुर दिखाई दे रहे हैं ।

मज़दूर—नाज इतना है कि उसके रखने तक की जगह नहीं है, और उसे इस चीज़ की चसक पड़ गई है । तब के बाद कई बार हमने शराब बनाई और एक कनस्तर भर के छिपा कर भी रख दिया है । बेकार किसी की खातिर करने की हमें ज़रूरत नहीं, लेकिन अगर किसी से अपना कुछ काम निकालना हो तो ज़रूर हम उसकी खातिर करेंगे । इसीलिए आज मैंने उससे कहा है कि गाँव के पंचों को बुला कर उनकी दावत कर दो जिससे ये तुम्हारे और तुम्हारे दादा के बीच में बटवारा करा दें और जो कुछ है वह तुम्हीं को मिल जाए, बुड्ढे को कुछ भी न मिले । आज

मेरे तीन साल पूरे हो गए और मेरा काम भी पूरा हो गया। सरदार अब आकर खुद देख जाए,। उसके देखने पर मुझे शरमिन्दा होने की जरूरत नहीं होगी।

(पिशाचों का सरदार भूमि के भीतर से निकलता है।)

सरदार—तेरी मियाद पूरी हो गई। क्या तूने अपनी रोटी-वाली भूल का बदला चुकाया। मैंने तुझसे कहा था कि मैं खुद आकर देखूँगा। अब दिखा कि तू किसान को ढँग पर ला सका या नहीं।

मजदूर—पूरे ढँग पर। अपने-आप देख न लो। कुछ तो अभी यहाँ आ कर इकट्ठे होंगे। खाट के नीचे छिप कर देखते रहना कि वे क्या करते हैं। तुम खुश हो जाओगे।

सरदार—(चारपाई के नीचे छिप कर) अच्छी बात है। देखूँगा यहाँ से कि क्या किया है इसने।

(किसान और चार वृद्ध आदमियों का प्रवेश—पीछे-पीछे किसान की पत्नी आती है। मनुष्य चटाई पर बैठ जाते हैं। पत्नी भोजन की सामग्री उनके सामने रखती है। वृद्ध लोग किसान की शुभ-कामना करते हैं।)

पहला वृद्ध—क्यों, क्या यह पीने की चीज भौत बनाई है ?

मजदूर—जितनी की जरूरत थी उतनी बना डाली। ऐसी बढ़िया चीज को खराब क्यों किया जाए।

दूसरा वृद्ध—और ठीक भी बनी है ?

मजदूर—पहिली बार से बहुत अच्छी है।

दूसरा वृद्ध—पर तैने इसका बनाना सीखा कहाँ से ?

मज़दूर—इस दुनिया में घूमने-फिरने से बहुत-सी बातें आ जाती हैं।

तीसरा वृद्ध—इसमें सक नहीं, नज्जन एक बड़ा जानकार सकस है।

(पत्नी शराब और कई एक कुल्हड़ लाती है और उन्हें भर कर वृद्धों को देती है।)

पहला वृद्ध—जै नरायन की। (पीता है।) हाँ, यह है तो अच्छी। सीधी एक-एक जोड़ में जा घुसी। पीने की चीज़ असल में यही है।

(शेष तीन वृद्ध भी पीते हैं—सरदार चारपाई के नीचे से निकलता है—मज़दूर उसके पास जा खड़ा होता है।)

मज़दूर—(सरदार से) अब देखना क्या होता है। मैं इस औरत को अपने पैर से भड़का दूँगा और यह शराब को गिरा देगी। पहले उसे अपने आख़िरी बचे हुए टुकड़े की भी परवाह नहीं थी, पर अब देखना कि एक कुल्हड़ शराब के लिए वह क्या-क्या कहता है।

किसान—अच्छा तो ..अरी—और भर-भर के दे सब को। देख, इधर सुन—पहले इन्हें हमारे दोस्त को दे; फिर संपत चाचा को दे।

(पत्नी कुल्हड़ भर कर लाती है—मज़दूर उसके पैर में अपना पैर उलझा देता है—वह भड़भड़ा कर गिर पड़ती है और कुल्हड़ हाथ से छूट जाता है।)

पत्नी—ओ दैया ! तमाम बिखर गई। तू क्यों बीच में आ गया, नालायक कहीं का।

किसान—कैसी भोंड़ी जानवर है। उँगलिएँ हैं, देखो, जैसे भैंस के अँगूठे। और दूसरों को गालियाँ देती फिरती है, कैसी अच्छी चीज़ धरती पे बहा दी।

पत्नी—तो मैंने क्या जान के गिरा दी।

किसान—हाँ, जान के ही। जरा ठहर, फिर बताऊँगा तुझे कि धरती पे शराब किस तरह गिराई जावे है। (मज़दूर से) और तू गधा, नालायक। तू यहाँ क्या करता था ? जम के यहाँ जगह नहीं है क्या ?

(पत्नी फिर कुल्हड़ भरकर आगे बढ़ाती है।)

मज़दूर—(सरदार के पास जाकर) देख रहे हो ? पहले अपनी अकेली रोटी का भी इसे रंज नहीं था। अब एक कुल्हड़ के लिए वह अपनी औरत को मारते-मारते रह गया। मुझसे जम के घर जाने के लिए कहा।

सरदार—बहुत ठीक। ख़ूब किया। मैं ख़ुश हूँ।

मज़दूर—ज़रा और ठहरो। यह बोतल खाली हो जाने दो। फिर देखना कि क्या-क्या रंग नजर आते हैं। अभी से ये लोग एक दूसरे की ठकुरसुहाती बातें कर रहे हैं, ज़रा देर में तो ख़ुशामद ही करने लगेंगे—जैसे मक्कार लोमड़ियाँ भी होती हैं न।

किसान—अच्छा पंचभाइयों। अब मेरे कारज में तुम्हारी क्या सल्लाह है ? मेरे दादा मेरे ही पास रहते रहे और मैं उन्हें

बराबर खिलाता रहा। अब वह मेरे चाचा के यहाँ चले गए हैं और मिलकियत में से हिस्सा माँग कर चाचा को देना चाहते हैं। अच्छी तरह सोच के देखो। तुम अकलबन्द लोग हो और हमारे तो जैसे प्रान ही हो। तुम्हारे मुकालबे का गाँव भर में कोई नहीं। अब तुम्हीं हो, सुराज। सारा गाँव तुम्हें अव्वल नम्बर का आदमी कहता है और मैं तो तुम्हें अपने मा-बाप से जादे मानूँ हूँ। संपत चाचा तो हमारे पुराने हितैखी हैं।

पहला वृद्ध—(किसान से) अच्छे आदमी से बातें करने से जी खुस होता है। इसी तरह अकल आती है। वही बात तुम्हारी है। गाँव भर में तुम्हारे मुकालबे का कोई नहीं है।

दूसरा वृद्ध—अजी, क्या कहने हैं इनके। बड़े अकलबन्द, बड़े मुरौबती। इसी से तो मैं तुम्हें पसन्द करता हूँ।

तीसरा वृद्ध—मेरी तो भई, तुम से पूरी सहमताई है। बस कहने को लबज नहीं मिलते। आज ही घरवाली से कह रहा था ..

चौथा वृद्ध—अजी, सच पूछो तो इनसा कोई ढूँढने से भी नहीं मिल सकता। जो बखत पड़े पे काम आवे वही अपना मिन्तर होता है।

मजदूर—(सरदार को कुहनी से कुरेद कर) सुनते हो? सब के सब झूठ बोल रहे हैं। पीठ-पीछे सब एक दूसरे को गालियाँ देते हैं। पर देखो, यहाँ कैसे घुल-घुल कर बातें कर रहे हैं, गोया

कि लोमड़ियाँ दुम हिला रही हों। यह तमाम इस शराब की ही करामात है।

सरदार—यह शराब तूने बहुत अच्छी चीज़ बनाई है—बहुत अच्छी। अगर ये लोग इसी तरह झूठ बोलने लगें तो फिर सब के सब हमारे हो जाएँगे। मैं तुझसे खुश हुआ।

मज़दूर—अभी ज़रा और ठहरो। दूसरी बोतल खत्म होने पर ये और भी रंग लाएँगे।

पत्नी—(शराब देती हुई) लो एक कुल्हड़ और लो।

पहला वृद्ध—भौत तो नहीं हो जाएगी...जै भगवान्! (पीता है) भले आदमी के पास बैठ के पीने में भी मजा आता है।

दूसरा वृद्ध—पिए बगैर रहा कैसे जाए। ऐसी चीज कहीं मुँह से हटाई जाती है। खूब जिओ भैया, तुम और तुम्हारी घरवाली।

तीसरा वृद्ध—तुम्हारी उमर में बरकत हो भाई। वाह, कैसी अच्छी चीज़ पिलाई है। खूब मजा आया। हम तुम्हारा सब काम ठीक कर देंगे। यह मेरे ही हाथ में है।

पहला वृद्ध—तुम्हारे हाथ में। यह है उनके हाथ में जो तुम्हारे भी पंच हैं।

तीसरा वृद्ध—मेरे पंच मूरख हैं। (घुड़क कर) तू क्यों टर-टर करता है।

दूसरा वृद्ध—अब यह तुमने क्या शुरू किया? बड़े बेसमझ आदमी हो।

चौथा—नहीं, नहीं, इनका कहना सच है। महमान कोई

किसी की वैसे-ही खातर थोड़े-ही करता है। उसका अपना कारज है। सो, बस कारज हो जाएगा। बस खातर करे जाओ और हमारी ठीक-ठीक आवभगत करो। साफ़ बात कहता हूँ। गरज तुम्हारी मुझसे है, मेरी तुमसे नहीं। तुम तो निरे सुअर के भाई हो।

किसान—और तुम निरे सुअर ही हो। यहाँ किच-किच करने क्यों आए हो। समझे होगे डरा लूँगा। तुम सब खाने-भर के ही सेर हो।

पहला—तू सेखी किस बात की बघार रहा है तो? याद रखना, नाक पकड़ के रगड़ दूँगा।

किसान—आ, देख लेवें फिर, कौन किसकी नाक रगड़े है।

दूसरा—अपने को ऐसा कहीं का समझता होगा। जम के घर ना चला जा। भले आए इसके यहाँ। चलो जी अपने-अपने घर को चलो। (जाने के लिए उठता है।)

किसान—क्या, क्या, मंडली छोड़ के जावेगा। (पकड़ता है।)

दूसरा—छोड़ मुझे। अरे छोड़। नहीं तो जमाऊँहूँ एक धौल।

किसान—नहीं छोड़ते। तुझे क्या हक है कि...

दूसरा—देख, यह हक्क है। (मारता है।)

किसान—(अन्य छठों से) दुहाई! दुहाई! मदत! मदत!

(सब लोग एक दूसरे पर टूट पड़ते हैं और सब के सब एक साथ बोलते हैं।)

पहला वृद्ध—इसी लिए तो। इसी लिए तो कि यहाँ चहल-पहल हो रही है।

दूसरा वृद्ध—मैं सब ठीक करा दूँगा।

तीसरा वृद्ध—अच्छा थोड़ी और पिलवाओ।

मज़दूर—(सरदार से) देखा तुमने ? इस वक्त इनमें भेड़िये का खून दौड़ रहा था और ये भेड़ियों की तरह ख़ूँख़्वार हो गए थे।

सरदार—बेशक, शाबाश ! मैं तुझ से बहुत खुश हूँ।

मज़दूर—ज़रा और ठहरो। इन्हें तीसरी बोतल खत्म कर लेने दो। फिर और भी ज्यादा रंग चढ़ेगा।

[६]

गाँव की एक गली—दाहिनी ओर कुछ वृद्धा स्त्रियाँ किसान के दादा के साथ लकड़ी के लट्ठों पर बैठी हैं—बीच में स्त्रियों, बालकों और बालिकाओं का एक दल है—नाच-गाना हो रहा है—बालक, बालिकाएँ, स्त्रियाँ गा रही हैं—झोपड़ी के भीतर शोर होता है और शराबियों के चिल्लाने की-सी आवाज़ आती है—एक वृद्ध मनुष्य बाहर निकल कर नशे की आवाज़ में चिल्लाता है—किसान उसके पीछे-पीछे आकर उसे फिर भीतर ले जाता है।

किसान का दादा—हरे राम ! कैसी करतूत है ! कैसी करतूत है ! इससे जादे की किसी को जरूरत ही क्या है कि रोज अपना काम ठीक-ठीक कर लिया और कोई तीज-त्योहार हुआ तो अपने कपड़े-उपड़े धो लिए, जोत-बोत सफ़ा कर लिया और फिर

जरा देर बालकों के पास बैठके जी बहला लिया; या जरा बाहर निकल गए और गाँव के बूढ़े लोगों से तनक पुरानीं बातें सुनीं—या कुछ देर को लौंडे-लपाड़ों में ही मिल गए और उनका खेल देखा। अब यही लोग यहाँ खेल-कूद कर रहे हैं। इन्हें देखके कैसा जी खुसी होता है। इसमें दिल को भी खुसी होती है और कोई बुराई भी नहीं है। (झोपड़ी के भीतर शोर होता है।) पर इस तरह की करतूत...भगवान, ये क्या है? इससे आदमियों का बिगाड़ होता है और राच्छसों को खुसी। जब मोट चढ़ने लगता है तभी ऐसी बातें सूझती हैं।

(नशे में भरे लोग लड़खड़ाते हुए निकलते हैं। चिल्लाते हैं और लड़कियों को पकड़ लेते हैं।)

दो लड़कियाँ—छोड़ो संपत दादा! यह क्या—यह क्या करते हो.....

सब लड़के लड़कियाँ—चलो गली के भीतर चलें। अब यहाँ हमारा खेल नहीं हो सकेगा।

(खेलनेवाला दल चला जाता है।)

किसान—(दादा के पास जा कर।) लो, अब क्या मिला तुम्हें। पंच लोग तो सब कुछ अब मेरे ही नाम कर देंगे। (अंगूठा दिखा कर) और तुम्हारे हिस्से में पड़ेगा यह। समझ गए न? मेरा हो गया सब, मेरा। तुम्हारा कुछ भी नहीं रहा। अभी जान लोगे सब कुछ अपने आप।—

(चारों वृद्ध एक साथ बोलते हैं।)

पहला वृद्ध—ठीक है। मैं जानता हूँ कि असल बात क्या है।

दूसरा वृद्ध—(नाचता हुआ आगे बढ़ता है और पहले को झटका देकर अलग हटाता हुआ गाता है।)

सब से पहले सुनो मुझे, मैं हूँ एक पुरानी चिड़िया। ताना धिन.....

तीसरा वृद्ध—वाहरे यार, क्या पिलाई! तीनों तिरलोक सिद्ध हो गए।

चौथा वृद्ध—(नाचता और गाता है।)

खिसक चलो घर के भीतर, या खिसक चलो चरपैया पर,
जगह नहीं, प्यारी घरवाली कहो धरें कहँ अपना सर।

(वृद्ध लोग अपना-अपना जोड़ा बना कर एक दूसरे के हाथ में हाथ देकर आगे-पीछे चलते हैं। किसान झोपड़ी की तरफ़ लौटता है परन्तु वहाँ तक पहुँचने से पहले ही लड़खड़ा कर गिर पड़ता है और कराहट के ढंग से न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता है। किसान का दादा तथा उसके साथी चुपचाप उठते हैं और वहाँ से चले जाते हैं।)

मजदूर—तो देख लिया अब तुमने खुद? इस समय उनके भीतर सुअर का खून दौड़ रहा है। भेड़िए से अब ये लोग सुअर बन गए हैं। (किसान की तरफ़ इशारा करता है।) वह देखो वह पड़ा है, वहाँ कीचड़ में, और सुअर की मानिन्द भिनभिना रहा है।

सरदार—तू खूब कामयाब हुआ है। वाह, वाह, पहले लोमड़ियों की तरह—फिर भेड़ियों की तरह—और अब सुअर की तरह—नहीं, नहीं, तूने यह बहुत बढ़िया पीने की चीज़ बनाई है।

मगर, यह तो बता, तूने इसे बनाया किस तरह ? मैं समझता हूँ शायद लोमड़ियों, भेड़ियों और सुअरों का ख़ून मिलाकर बनाई होगी।

मज़दूर—अजी नहीं। मैंने तो उसे सिर्फ़ बहुत सारा नाज पैदा करवा दिया। जब तक उसके पास सिर्फ़ ज़रूरत भर को ही नाज था तब तक तो वह अपने आख़िरी बचे हुए टुकड़े की भी फ़िक्र नहीं करता था, लेकिन जब उसे अपनी ज़रूरत से बहुत ज्यादा मिल गया तो उसके भीतर लोमड़ी, भेड़िए और सुअर का ख़ून जाग पड़ा। हैवानी ख़ून तो उसके अन्दर छिपा हुआ था ही—हाँ, उस ख़ून को उभारने के लिए मौका नहीं मिलता था।

सरदार—बेशक, मैं मानूँगा कि तू होशियार आदमी है। तूने अपनी उस टुकड़ेवाली भूल का बहुत अच्छा एवज़ चुकाया है। अब तो इन लोगों को सिर्फ़ यह चीज़ पीते रहने की ज़रूरत है। फिर ये हमारे चंगुल से कहाँ जा सकते हैं।❀

❀ टालस्टाय के The First Distiller का अनुवाद।

ता

रा

शि

शु

किसी समय की बात है। दो ग़रीब लकड़हारे जैतून के एक सघन जंगल में हो कर अपने घर जा रहे थे। सर्दी का मौसम था और रात जैसे काट खाना चाहती थी। पृथ्वी के ऊपर और वृक्षों की टहनियों पर बर्फ़ की तहें जम रही थीं। पाला इस ज़ोर से गिर रहा था कि इन दोनों को अपने इधर-उधर उसके पत्तियों पर पड़ने की झीमी सीत्कार सुनाई देती थी। और जिस समय वे पहाड़ी स्रोतिका के पास पहुँचे तो वह शान्त, सुखी भाव से वायु में सो रही थी; क्योंकि राजा हिम ने उसका चुम्बन कर लिया था।

ठंड तो इतनी कड़ाके की थी कि पशुओं और पक्षियों तक की समझ में न आता था कि क्या करें।

अपनी टाँगों के बीच में अपनी पूँछ को समेट कर लँगड़ाते हुए-से भेड़िए ने कहा, "उफ़्, पूरा शैतानी मौसम हो रहा है। सरकार इसका कोई प्रबंध क्यों नहीं करती।"

जंगल की चिड़ियों ने चहचहाने का प्रयास किया—"चुहु चुहू, चुहु चुहू। बुढ़िया पृथ्वी मर गई है। इसलिए लोगों ने उसे सफ़ेद वस्त्रों में लपेट कर रक्खा है।"

"पृथ्वी का विवाह होने वाला है और उसने अपने विवाह के लिए सफ़ेद कपड़े बनवाए हैं," एक कमेड़ी दूसरी से बोली।

उनके छोटे-छोटे पैर बिलकुल अकड़ गए थे। परन्तु कठिन परिस्थिति को आनन्द और अद्भुत के कौतूहल से स्वीकार करना वे अपना कर्तव्य समझती थीं।

भेड़िया गुरगुराया—"हिश्! हिश्! मैं कहता हूँ यह सब सरकार का दोष है और यदि तुम कोई मेरी बात को नहीं मानोगी तो मैं तुम्हें खा डालूँगा।" भेड़िया पूरे व्यावहारिक ढंग का व्यक्ति था और कोई युक्ति सोचने के लिए उसे कभी कठिनता नहीं होती थी।

खुटबढ़ई जन्म का दार्शनिक था। बोला, "मेरी बात तो यह है कि मैं समाधानों के फेर में ज़रा नहीं पड़ता। यदि एक बात एक प्रकार की है तो वह वैसी है ही। उसको और किसी तरह समझने से क्या लाभ,—और सचमुच इस समय बड़ी विकट सर्दी है।"

और सचमुच उस समय बड़ी विकट सर्दी थी भी। छोटी-छोटी गिलहरियाँ जो पेड़ों के खोखलों में रहा करती थीं आपस में एक दूसरी की नाक से नाक रगड़ कर अपने को भरका रही थीं तथा खरगोश अपने-अपने बिलों में उमेठे हुए पड़े थे। उन्हें अपनी खिड़कियों से बाहर झाँखने का भी साहस नहीं हो रहा था। प्रकृति में केवल उल्लू ही ऐसे महाजन्तु थे जिन्हें कुछ मज़ा आ रहा था। उनके पंख ठंड से अकड़ पापड़ बन रहे थे, पर वे अपनी गोल-गोल आँखें इधर-उधर घुमा कर एक दूसरे से कहते थे—"अहा-हा, कैसी अच्छी ऋतु है।"

बढ़े जा रहे थे और बढ़े जा रहे थे दोनों लकड़हारे, अपनी उँगलियों और हथेलियों को बार-बार फूँकते हुए और अपने नालदार जूतों को बरफ़ की ज़मीन पर पटकते हुए। एक बार वे एक गड्ढे में गिर पड़े, और जब वे निकले तो ऐसे जैसे आटा पिसते समय आटा पीसने की मशीन के पास से आटा पीसने-वाले। और एक बार वे बर्फ़ पर ही फिसल पड़े और उनके सिर के गट्ठर गिर जाने से सब लकड़ियाँ बिखर गईं। बेचारों को उस सर्दी में उन्हें बीन-बीन कर फिर गट्ठर बनाने पड़े। फिर, एक बार वे अपना रास्ता ही भूल गए और डर के मारे अधमरे हो रहे। उन्हें मालूम था कि जो लोग हिम की गोद में आराम करने का शौक करते हैं उन पर हिमराज की कृपा नहीं होती। परन्तु भगवान् पर भरोसा रख कर वे फिर पीछे को लौटे और अपनी आशा-निराशा को मिला कर धीरे-धीरे चलते हुए वे जैसे-तैसे जंगल के सिरे पर पहुँच गए। यहाँ से उन्हें अपने सामने उस गाँव के घरों का प्रकाश दिखाई देने लगा जिसमें उनका भी घर था।

इस समय अपने पुनर्जन्म पर उन्हें ऐसा हर्ष हुआ कि वे बड़े ज़ोर से हँस पड़े। पृथ्वी उन्हें चाँदी का एक बड़ा फूल-सा दिखाई देने लगी और चन्द्रमा सोने के एक बड़े फूल के समान।

हँस तो पड़े, परन्तु तुरन्त ही उन्हें अपनी ग़रीबी का ध्यान आया और वे उदास हो गए। उनमें से एक ने कहा, "हम लोग किस लिए ऐसे हँस रहे हैं?—यह जानते हुए भी कि जीवन तो धनियों के लिए है, हम जैसों के लिए नहीं। बड़ा अच्छा होता

जो हम सर्दी से ऐंठ कर जंगल में ही मर गए होते, या किसी जंगली पशु के पेट भरने के काम ही आ गए होते।"

"सच्ची बात है," उसके साथी ने कहा, "कुछ को तो बहुत ज्यादा दे दिया जाता है और कुछ को बिलकुल ही नहीं। अन्याय ने पृथ्वी को अच्छी तरह कस रक्खा है।"

पर जिस समय वे अपने दुर्भाग्य को इस तरह कोस रहे थे उसी समय एक बड़ी अद्भुत बात हुई। स्वर्ग से एक बड़ा मनोहर और चमकीला तारा गिरा। वह आकाश के सिरे से सरक कर, दूसरे तारों के पार्श्व में होता हुआ, उनके देखते-देखते, कुछ लम्बे वृक्षों के समूह के पीछे, गिर कर छिप गया। वृक्ष-समूह उन दोनों से केवल इतना दूर था कि उस तक पत्थर फेंका जा सकता था।

"देखो, भगवान ने हमारे लिए सोने का एक बड़ा ढेला फेंका है।"—दोनों के दोनों एक साथ ही चिल्लाए, और वे उसे ढूँढ़ने के लिए दौड़े। आशा ने इतना उद्योगी बना दिया था उन्हें।

और उनमें से एक अपने साथी से अधिक तेज़ दौड़ लेता था। और वह अपने साथी को पीछे छोड़ पेड़ों के झुंड में घुस गया और दूसरी ओर आ निकला। और लो, वहाँ सचमुच ही सफ़ेद बर्फ़ के ऊपर सोने की वस्तु पड़ी चमक रही थी।

झपटा वह उसकी तरफ़, और झुका, और उसने उसे हाथों में उठा लिया। और उसने देखा कि उसके हाथों में अनेक तह किया हुआ, बहुत बढ़िया सुनहरी काम से जड़ा हुआ एक बहुमूल्य

लबादा रक्खा है। उसने वहीं से अपने साथी को पुकारा और कहा, "देखो, ओ देखो, आसमान से जो सोने की थैली गिरी थी सो मिल गई मुझे।"

साथी के आ जाने पर दोनों वहीं बरफ़ के ऊपर बैठ गए और उन्होंने सुवर्ण का बराबर-बराबर भाग करने के लिए लबादे की तह को खोला। परन्तु ओहो, उसमें तो सोना था ही नहीं, और न चाँदी ही, और न किसी और प्रकार का ही कोई अन्य द्रव्य। तहों के भीतर एक छोटा-सा बालक सो रहा था।

तब एक ने दूसरे से कहा, "यही हमारी आशाओं का फल भगवान ने दिया। भाग्य अच्छा नहीं मालूम होता। भला इस बालक को लेकर हम क्या करेंगे? छोड़ चलो इसे यहीं और चलो अपने घर। हम लोग गरीब आदमी हैं। अपने ही बालकों को खिलाने के लिए काफ़ी रोटी नहीं मिलती। दूसरे को कहाँ से खिलाएँगे?"

परन्तु दूसरे ने उत्तर दिया, "नहीं नहीं, इस बालक को यहाँ बरफ़ में जमने देने के लिए छोड़ देना बुरी बात होगी। मैं भी तुमसा ही ग़रीब हूँ और बहुत से आदमियों का पेट मुझे भरना पड़ता है। पर मैं तो इसे अपने घर ले जाऊँगा और मेरी स्त्री इस की देख भाल करेगी।"

बड़ी मृदुता से उसने बच्चे को लिया, उसे अच्छी तरह लबादे से ढका, जिससे उसे ठंड न लग सके, और पहाड़ी से उतर कर गाँव की तरफ़ चल दिया। उसके साथी को उसकी

मूर्खता पर, उसके हृदय की इस कोमलता पर, आश्चर्य हो रहा था।

जब दोनों आदमी बच्चे के साथ गाँव में पहुँच गए तो साथी ने कहा, "बच्चा तो तुमने लिया ही है—यह लबादा मुझे दे दो; क्योंकि हम दोनों का हिस्सा तो होना ही चाहिए।"

"न, यह लबादा तुम्हें नहीं मिल सकता। यह न मेरा है, न तुम्हारा। यह तो इस बालक का ही है।" यह कह कर उसने अपने साथी को रवाना किया और अपने घर पहुँच कर द्वार खटखटाया।

और उसकी स्त्री ने जब देखा कि मेरा पति सुरक्षित और तन्दुरुस्त घर लौट आया है तो उसने ईश्वर को धन्यवाद दिया और उसके गले में हाथ डाल दिए। उसकी कमर से लकड़ियों का गट्ठर उतार कर वह उसके पैरों पर से बरफ़ झाड़ने लगी और उससे भीतर आने को कहने लगी।

परन्तु वह बोला, "देखो, मुझे जंगल में कुछ मिला है जिसे मैं तुम्हारे पास लाया हूँ कि तुम इसकी अच्छी तरह देख-रेख करो।" और वह दरवाज़े पर ही खड़ा रहा।

"क्या है?" स्त्री बोली, "देखूँ, देखूँ। आजकल घर में कुछ है भी नहीं और हमें बहुत सी चीज़ों की ज़रूरत है।"

पति ने लबादे की तह खोल कर सोता हुआ बालक उसके सामने कर दिया। और पत्नी ने बालक को देखा और असन्तोष दिखाते हुए कहा, "यह क्या लाए हो तुम? क्या भगवान ने हमें

बच्चे नहीं दिए हैं जो तुम यह हराम-का कहीं से उठा लाए। और, क्या जाने, कहीं यह कोई बुरी तकदीर लेकर न आया हो। हम कैसे इसका पालन कर सकते हैं।" उसे क्रोध हो आया।

"पर नहीं, यह मामूली बालक नहीं है। यह तारा-बच्चा है।" उसने अपनी पत्नी को बालक के मिलने का पूरा वृत्तान्त सुनाया।

"पर वह क्यों मानने लगी। उसने उसे चिढ़ाया, मुँह बनाया, और क्रोध में बोली, "हमारे बालकों को तो रोटी है नहीं, और दूसरे के जाए को हम पेट भरके खिलाएँगे। हमारे लिए भी कोई कुछ करता है? हमें भी कोई रोटी दे जाता है क्या?"

"अरी नहीं। ऐसे मत बोल। देख, ईश्वर चिड़ियों तक की चिन्ता रखता है और उन्हें चुग्गा देता है।"

"क्यों, चिड़ियाँ सर्दी से मरती नहीं क्या? और क्या आज-कल सर्दी नहीं है?"

परन्तु उसके आदमी ने कोई उत्तर नहीं दिया और न वह दर-वाज़े के भीतर ही आया।

और उसी समय जंगल की कटखनी वायु का एक झोंका द्वार में को होकर घुसा और वह काँपने लगी, और काँपती हुई बोली, "दरवाजा क्यों नहीं बन्द कर देते हो? देखते नहीं, कैसी ठंडी हवा आ रही है?"

"जिस घर में एक ऐसा कठोर हृदय मौजूद हो वहाँ ठिठुराने वाली हवा नहीं आएगी क्या?" उसने पूछा।

परन्तु पत्नी ने कोई उत्तर नहीं दिया और वह अँगीठी के पास को सरक गई। और जब थोड़ी देर बाद उसने सिर घुमा कर अपने पति की ओर देखा तो उसकी आँखें आँसुओं से भीग रही थीं। यह देख वह भीतर घुस आया और उसने बालक को उसकी गोदी में लिटा दिया,—और पत्नी ने बालक का चुम्बन किया और उसे ओढ़ा कर छोटे खटोले पर लिटाया जहाँ उसका सब से छोटा शिशु सोया हुआ था। जब दिन निकला तो लकड़-हारे ने उस सुनहरी लबादे को उठाया और उसे बहुत सँभाल कर सन्दूक में रख दिया। और बालक के गले में जो एक जंजीर थी उसे पत्नी ने निकाला और उसे सँभाल कर सन्दूक में रख दिया।

[२]

इस प्रकार ताराशिशु लकड़हारे के बच्चों के साथ पला और बढ़ा। वह उन्हीं के साथ बैठ कर खाना खाता, उन्हीं के साथ खेलता, और दिन-प्रति-दिन, वर्ष-प्रति-वर्ष, वह अधिकाधिक सुन्दर दिखाई देता और जो लोग गाँव में रहते थे उन्हें उसे देख कर आश्चर्य होता। क्योंकि वे सब तो काले और गँदले थे जिनके शरीर प्रायः पसीजे रहते, और वह गोरा और चिकना और सुकुमार था और उसके चमकीले बालों में छल्ले पड़े थे। उसके होठों में गुलाबी फूलों की पंखुड़ियाँ दीखती थीं और उसके नेत्र स्फटिक-जल में खिले हुए कमल थे। और उसके तमाम अंग उस खेत के नर्गिस थे जिस खेत में खेल काटनेवाले का काम नहीं।

फिर भी उसकी मनोहरता ने तो उसके लिए बुराई ही की। क्योंकि बड़ा हो कर वह घमंडी, क्रूर और स्वार्थपर हो गया। लकड़हारे के तथा गाँव के दूसरे बालकों को वह घृणा करता। वह कहता—"ये सब क्षुद्र माता-पिता की सन्तान हैं और मैं उच्च हूँ क्योंकि मेरी उत्पत्ति आकाश के नक्षत्र से है।" वह अपने को उनका मालिक समझता और उनको अपना नौकर। उसे गरीबों पर दया नहीं थी। जो अन्धे या लँगड़े या और किसी प्रकार से अपाहिज होते उन पर वह पत्थर फेंकता और उन्हे सड़क पर दूर तक खदेड़ आता। उन्हें उस गाँव में भीख तक न माँगने देता। उसे अपनी सुन्दरता और स्वस्थता का बड़ा गुमान हो गया था। और दुर्बल तथा असुन्दर की खिल्ली उड़ाने में उसका विनोद होता था। वह केवल अपने आप को ही प्रेम करता और गर्मियों में, जिस समय लू नहीं चलती होती, वह गाँव के पांडे की बावड़ी पर पेड़ों की छाया के नीचे जा लेटता और बावड़ी के जल में अपना रूप निहार-निहार कर प्रसन्न हुआ करता।

लकड़हारा और उसकी पत्नी प्रायः उसे समझाते—"हमने तो तुम्हारे साथ वैसा नहीं किया जैसा तुम बे-आसरे गरीबों के साथ करते हो, जिन्हें कोई सहायता पहुँचानेवाला नहीं है। जिन पर दया करनी चाहिए तुम उनके साथ इतनी कठोरता क्यों करते हो?"

प्रायः बुड्ढा पांडे उसे अपने यहाँ बुलाकर जीवप्रेम की शिक्षा देता और कहता—"मक्खी-पतिंगे भी तुम्हारे भाई-बहन

हैं। उन्हें हानि मत पहुँचाओ। जंगल की चिड़ियाँ जो जंगल में घूमती हैं उन्हें भी अपनी स्वाधीनता का अधिकार है। अपने खेल के लिए उन्हें जाल में न फँसाओ। ईश्वर ने ही कीड़े-मकोड़े भी बनाए हैं। विश्व के भीतर उनका भी स्थान है। भगवान के संसार में कष्ट और पीड़ा को जन्म देनेवाले तुम कौन होते हो? खेतों में जो पशु डोलते और घास चरते हैं वे भी उसकी कीर्ति गाते हैं।"

पर ताराशिशु के ऊपर किसी के भी शब्दों का प्रभाव न होता। वह उन पर गुस्सा करता, मुँह बिगाड़ता और अपने साथियों में जाकर उन पर शासन करने लगता। और उसके साथी उसके शासन को मानते थे क्योंकि उसका रंग गोरा था और उसके पैर में लचक थी, वह नाचता और सीटी बजाता था, गाना गाता था। जहाँ कहीं ताराशिशु उन्हे ले जाता वहीं वे जाते और जो कुछ करने को वह उन्हें कहता वही वे करते। जब वह एक तेज़ नुकीली सलाख़ लेकर छछूँदर की आँख में घुसेड़ देता तो वे हँसते और जब वह कोढ़ी के ऊपर पत्थर फेंकता तो वे खिलखिलाते। सभी बातों में वह उनका शासक और निदर्शक था और होते-होते वे भी वैसे ही कठोर-हृदय हो गए जैसा वह स्वयं था।

[३]

एक दिन ऐसा हुआ कि उस गाँव में होकर एक बेचारी भिखमंगी निकली। उसके कपड़े फटे हुए, चिथड़े थे और दूर से

पथरीली सड़क पर चलती आने से उसके पैरों से खून बह रहा था। उसकी दशा बड़ी ही ख़राब थी। बहुत अधिक थकी होकर वह थोड़ी देर सुस्ताने को एक पेड़ के नीचे बैठ गई।

परन्तु जब ताराशिशु ने उसे देखा तो वह अपने साथियों से बोला, "देखो, यहाँ इस सुन्दर और हरे-हरे पत्तोंवाले मनोहर वृक्ष के नीचे यह गन्दी कोढ़न बैठी है। बदसूरत और घिनौनी इसका यहाँ बैठने का क्या अधिकार है? चलो इसे मार भगाएँ।"

अतः उसके पास पहुँच कर उन लोगों ने उस पर पत्थर फेंके और उसकी भर्त्सना की। वह व्याकुल तथा घबड़ाई दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी, और उसी प्रकार देखती रही। जब लकड़हारे ने, जो पास ही में कहीं लकड़ी चीर रहा था, ताराशिशु का यह कर्म देखा तो वह दौड़ा आया और यों झिड़कने लगा—"क्यों, क्या तेरा दिल बिलकुल पत्थर का बना है? तेरे में बिलकुल ही दया नहीं है क्या? इस गरीबनी ने तेरा क्या बिगाड़ किया है जो तू इस तरह उसे सता रहा है।"

ताराशिशु तो इस पर क्रोध से लाल हो गया और अपना पैर भूमि पर पटकता हुआ बोला, "जा जा, तू कौन है जो मुझ से इस तरह सवाल-जवाब करने आया है? मैं कोई तेरा लड़का नहीं हूँ जो तू आकर मुझे हुकुम देगा।"

बुढ़िया ने जब ये बातें सुनीं तो उसके मुँह से दुःख के साथ एक जोर की चीत्कार निकल गई और वह बेहोश होकर गिर

पड़ी। यह देख लकड़हारा बेचारा उसे उठा कर अपने घर ले गया और उसकी पत्नी उस बुढ़िया की शुश्रूषा करने लगी। जब बुढ़िया को फिर चेतना हो आई तो उन लोगों ने उसके सामने खाने-पीने को रक्खा और उसे सान्त्वना दी।

पर उसने न तो कुछ खाया और न पिया और लकड़हारे से यों पूछने लगी, "क्यों जी अभी तुमने मुझ से यह कहा था न कि तुम्हें यह बालक जंगल में मिला था.....और तुमने यह भी कहा था कि इस बात को दस बरस हो गए ?"

और लकड़हारे ने उत्तर दिया, "हाँ माँ, मुझे यह जंगल में ही मिला था और इस बात को दस बरस हो गए।"

" और तुमने इसके साथ क्या-क्या वस्तुएँ देखी थीं ? इसके गले में एक जंजीर भी थी क्या ? और क्या यह एक सुनहरी तारों के लबादे में नहीं लिपट रहा था ? "

"हाँ हाँ," लकड़हारे ने कहा, " इसी तरह यह मुझे मिला था।" और वह दौड़ गया गले की जंजीर और सोने का लबादा सन्दूक से निकाल लाकर बुढ़िया को दिखाने के लिए।

और जैसे ही बुढ़िया ने दोनों को देखा वह आनन्द में भर कर रोने लगी और बोली, " यही मेरा बेटा है। यही मेरा लाल है जिसे मैं जंगल में खो आई थी। भैया, उसे जल्दी से बुलवाओ तो। मैं दुखिया दस बरस से उसके लिए तमाम दुनिया छानती फिर रही हूँ। "

सो लकड़हारा और उसकी पत्नी ताराशिशु के पास गए और

उससे बोले, " चलो चलो, जल्दी घर में चलो। वहाँ तुम्हारी माँ बैठी तुम्हारी बाट जोह रही है।"

ताराशिशु आश्चर्य और आनन्द से उछलता हुआ घर पहुँचा। पर जब उसने वहाँ उसे देखा जो बैठी थी तो वह घृणा से हँस कर कहने लगा, " क्यों, कहाँ है मेरी माँ? यहाँ तो इस घिनौनी भिखारिन को छोड़ मुझे और कोई नहीं दीखता।"

और तब बुढ़िया प्यार से बोली, " आ-आ, बेटा! मैं ही तेरी माँ हूँ।"

" ऐं! तू मेरी माँ है! क्या तू पागल भी है? इस चिथड़ही, बदसूरत भिखमंगनी का मैं बेटा हूँ! जा-जा, भाग यहाँ से, अभी निकल। तेरी सूरत मुझे फिर न दिखाई दे।"

" नहीं-नहीं बच्चे, तू ही मेरा बेटा है जिसे मैंने जंगल में पैदा किया था," और उसने घुटनों के बल बैठ कर अपने बेटे को गोद में लेने के लिए दोनों हाथ फैला दिए।—" बेटा, डाकू तुझे मुझसे छीन कर ले गए थे और वहीं कहीं डाल गए थे"—उसने फिर धीरे-धीरे कहा—"पर जब मैंने तुझे देखा तो झट पहचान लिया, और मैंने उस लबादे और जंजीर को भी पहचान लिया जो तेरे साथ थी। ले ले बेटा, अब देर मत कर और मेरी गोदी में आ जा। मैं दुनिया भर में तुझे ढूँढ़ फिरी हूँ। अब तो मुझे अपना प्यार दे। मुझे उसकी बड़ी ज़रूरत है।"

पर, ताराशिशु अपनी जगह से नहीं हिला। उसने अपने हृदय के कपाट बिलकुल ही बन्द कर लिए। स्त्री के सिसकने की

आवाज़ को छोड़ कर और किसी तरह की आवाज़ भी वहाँ नहीं हुई।

और जब अन्ततः ताराशिशु ने अपना मुँह खोला तो उसके शब्द कठोर और कड़वे थे। उसने कहा, "देख, यदि तू सचमुच ही मेरी मा है तो भी यहां अच्छा था कि तू मुझे घृणित बनाने के लिए यहाँ न आती; क्योंकि तुझे मालूम है कि मैं अपने आप को तुझे-जैसी भिखमंगी का पुत्र न समझ कर नक्षत्र का पुत्र समझता हूँ। इसलिए तू अब यहाँ से भाग जा और मैं तुझे कहीं भी न देखने पाऊँ।"

"मेरे बेटे! मेरे बेटे! मैं चली जाऊँगी। पर क्या तू मुझे एक बार अपना चुम्बन भी नहीं करने देगा। मैंने तुझे पाने के लिए बड़ी मुसीबतें उठाई हैं।"

"नहीं नहीं, जा, चली जा। तेरी सूरत ही देखने में घिन आती है—तू मेरा चुम्बन करेगी! साँप और मेंढक भी देखने में तुझ से कहीं अच्छे हैं।"

फिर हार कर बुढ़िया को उठना ही पड़ा और वह रोती हुई जंगल की तरफ चली गई। ताराशिशु को उसके चले जाने पर बड़ी प्रसन्नता हुई और वह दौड़ा-दौड़ा फिर अपने साथियों में खेलने को चला गया।

[४]

परन्तु ज्योंही साथियों ने उसे आते हुए देखा, वे उसे चिढ़ाने लगे और कहने लगे, "अरे, अरे, यह क्या हुआ। तुम तो साँप

से भी अधिक डरावने और मेंढक से भी ज्यादा बदसूरत हो गए। हटो, हटो, हमारे पास से। हम तुम्हारे साथ नहीं खेलेंगे" और यह कहते-कहते उन्होंने उसे बगिया में से खदेड़ दिया।

और ताराशिशु झल्लाने लगा और अपने मन में सोचने लगा, "यह सब-के-सब क्या बकवाद करते हैं? मेरे समान तो इनमें से कोई भी सुन्दर नहीं है। अच्छा मैं बावड़ी के जल में जाकर देखूँगा। जल तो बता ही देगा कि मैं कितना सुन्दर हूँ।"

तो बस, वह बावड़ी पर गया और उसके जल में झाँक कर देखने लगा। और जल में उसने देखा कि उसका चेहरा मेंढक से भी ज्यादा घृणित है और उसके शरीर पर साँप की तरह चित्तियाँ पड़ी हुई हैं। तब तो वह घास पर पड़ रहा और फूट-फूट कर रोने लगा और कहने लगा, "यह सब मेरे पाप का दंड है। मैंने अपनी मा का तिरस्कार किया, उसे ठुकरा कर निकाल दिया, उसके साथ घमंड और निर्दयता से बातें कीं। यह सब उसी का दंड है। मैं भी जाऊँगा और उसे तमाम दुनिया में ढूँढूँगा, जैसे उसने मुझे ढूँढा था। और जब तक उसे ढूँढ नहीं लूँगा मुझे चैन नहीं पड़ेगा।"

लकड़हारे की छोटी लड़की उसके पास आई और सहानुभूति से उसके कंधे पर हाथ रखती हुई बोली, "अच्छा, यदि तुम्हारी सुन्दरता चली गई तो भी क्या हुआ? तुम कहीं मत जाओ, यहीं रहो। मैं तुम्हें नहीं चिढ़ाया करूँगी।"

परन्तु ताराशिशु ने कहा, "मैं तो अब नहीं रुक सकता। मैंने

अपनी माता का तिरस्कार किया है और उसी का मुझे यह फल मिला है। अब तो मैं जाऊँगा ही और तब तक तमाम दुनिया में उसे ढूँढूँगा जब तक वह मुझे मिल नहीं जाएगी और क्षमा नहीं कर देगी।"

और वह जंगल की तरफ़ दौड़ चला और चिल्ला-चिल्ला कर अपनी माता को पुकारने लगा। परन्तु कहीं से भी कोई भी उत्तर उसे नहीं मिला। दिन भर वह उसे इसी तरह पुकारता रहा और जब रात हुई तो कुछ पत्ते बटोर कर वहीं बिछा कर सो रहा। उसे वहाँ देख कर पशु और चिड़ियाँ वहाँ से भागने लगीं, क्योंकि उन्हें उसके निर्दय कर्मों की याद थी। केवल मेंढक अवश्य उसके पास बैठे रहे और साँप उसके इधर-उधर रेंगते रहे।

दिन निकला तो वह उठा, कुछ कच्ची-पक्की बेरियाँ तोड़ कर खा लीं और फिर जँगल में घूमने और 'मा मा' करके रोने-चिल्लाने लगा। जँगल में जो कोई, जो कुछ भी, उसे मिलता उसी से पूछता कि क्या तुमने मेरी मा देखी है।

छछूँदर से उसने पूछा, "तुम तो ज़मीन के भीतर भी चली जा सकती हो। बताओ तो, क्या मेरी माता को वहाँ देखा है?"

पर छछूँदर ने उत्तर दिया, "तुमने तो मेरी आँखें फोड़ रक्खी हैं। मैं देख ही कैसे सकती हूँ।"

और चिड़िया से पूछा, "तुम तो ऊँचे-ऊँचे वृक्षों के शिखरों पर चढ़ कर सारा संसार देखती होगी। क्या कहीं मेरी माता दिखाई दी है?"

पर चिड़िया ने भी उत्तर दिया, "तुमने अपने उत्सव के लिए मेरे पंख काट डाले थे। अब मैं उड़ ही कैसे सकती हूँ?"

और फिर गिलहरी से उसने पूछा, "कहो तो जी, कहीं मेरी माता का भी पता है?"

पर गिलहरी बोली, "तुमने मेरी माता को तो मार ही डाला। क्या अब अपनी को भी मारोगे?"

तब ताराशिशु रोने लगा और सिर झुका कर बैठ गया और ईश्वर की उन रचनाओं से क्षमा माँगने लगा जिनका उसने अपकार किया था। वह भिखारिनी को ढूँढ़ता-ढूँढ़ता फिर जंगल में भटकने लगा। तीसरे दिन वह जंगल के दूसरे सिरे पर पहुँचा और सामने के मैदान में चलने लगा।

जब वह गाँवों में पहुँचा तो वहाँ के बालकों ने उस पर तालियाँ बजाईं और पत्थर फेंके। और किसानों ने उसे अपने खलिहानों के पास तक न सोने दिया—इस डर से कि कहीं यह अभागा कटे हुए अनाज पर किसी तरह का कुभाग्य न ढलका दे। किराए के मजदूरों तक ने उसे धक्का देकर भगा दिया—ऐसा बदसूरत वह था—और किसी ने भी उसे कोई दया नहीं दिखाई।

तीन बरस तक उसने दुनिया का चक्कर काटा पर उसे वह भीख माँगनेवाली न मिली जो कि उसकी माता थी। कभी-कभी ऐसा होता कि वह उसे दूर से दिखाई देती-सी मालूम होती और वह उसे ज़ोर-ज़ोर से पुकारने लगता। और वह उसे पकड़ने के लिए तेज़ी से दौड़ता और रास्ते के पत्थर उसके पैरों में घाव करके

खून निकाल देते। परन्तु वह उसे पकड़ न पाता। मार्ग के लोगों से जब वह पूछता तो वे कहते कि हमने तो किसी भी स्त्री को नहीं देखा है, और जब वह दुखी होता तो वे हँसते।

तीन बरस तक उसने तमाम दुनिया की खाक छानी और इन तीन बरस में उसे कहीं भी प्रेम या दया या सहानुभूति का लेश तक न मिला। भगवान् ने उसे वैसी ही दुनिया बरतने को दी जैसी कि उसने स्वयं अपने गर्व और अहंकार के दिनों में बना ली थी।

एक रोज़ सायंकाल को वह एक शहर की चारदीवारी के द्वार पर पहुँचा, जो एक नदी के किनारे बसा हुआ था। वह बहुत थका-माँदा था, पर इस बात की चिन्ता न कर वह फाटक में प्रवेश करने के लिए बढ़ा। परन्तु उसकी ऐसी चेष्टा देखते ही पहरे के सिपाहियों ने उसके सामने द्वार में अपनी बरछियाँ रोप दीं और कर्कश स्वर में उससे कहा, "क्यों, क्या है? कहाँ जाता है?"

"मैं अपनी माता को ढूँढता फिरता हूँ," उसने उत्तर दिया, "और मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ, देखो, मुझे जाने दो। क्या जाने वह इसी नगर में हो।"

पर वे उसे चिढ़ाने और व्यंग्य बोलने लगे। एक ने अपनी ढाल नीचे रख कर दाढ़ी हिलाते हुए कहा, "अख़् आः। जनाब की मा जनाब को देख कर बहुत ही खुश होंगी क्योंकि जनाब मेंढक से भी ज्यादा ख़ूबसूरत और चितकबरे साँप से भी ज्यादा

हसीन हैं। क्यों न ?—जा जा, भाग यहाँ से। नहीं है तेरी मा इस शहर में।"

एक दूसरा, जिसके हाथ में पीला झंडा था, बोला, "क्यों जनाब, आपकी मा कौन साहिबा हैं और आप उन्हें क्यों तलाश कर रहे हैं ?"

और उसने उत्तर दिया, "मेरी मा भी भिखारिनी है, जैसा कि मैं हूँ। मैंने उसके साथ बड़ा बुरा बर्ताव किया है और इसीलिए मैं तुमसे खुशामद करता हूँ कि मुझे जाने दो जिससे मैं उसकी क्षमा माँग सकूँ। शायद वह इसी नगर में निकल आवे।"

परन्तु उन्होंने उसकी प्रार्थना न सुनी और अपने भाले उसको चुभाने लगे।

और जब वह वहाँ से रोता हुआ लौट कर जाने लगा तो एक आदमी जो कवच धारण कर रहा था, और जिसके कवच पर नीले फूल बन रहे थे और जिसके फ़ौजी टोप के ऊपर परोंदार एक सिंह बैठाया हुआ था, वहाँ आया और सिपाहियों से उसके संबंध में पूछने लगा जो नगर में जाना चाहता था। और सिपाहियों ने कहा, "यह कोई भिखमँगा है और किसी भिखमंगे का ही बालक है और हमने इसे भगा दिया है।"

"पर नहीं," वह कवचधारी हँस कर बोला, "यह तो गुलामों में बेचा जा सकता है। इसकी क़ीमत से एक प्याला शराब ख़रीदी जा सकेगी।"

और तभी उधर से एक क्रूर-मूर्ति बुड्ढा निकला और उसने कहा, "हाँ मैं इसे इतने दामों में ख़रीद सकता हूँ," और उसने तत्काल मूल्य निकाल कर दे दिया। और मूल्य लेकर सिपाहियों ने ताराशिशु को पकड़ कर उसके हाथों सौंप दिया।

[५]

तब वह बुड्ढा तारा-शिशु का हाथ पकड़ कर उसे शहर की गलियों-गलियों ले जाने लगा। अन्ततः वे एक छोटे से द्वार पर पहुँचे जो अनार के वृक्षों से ढका हुआ था। बुड्ढे ने द्वार को अपनी मणिजटित अँगूठी से छुआ और द्वार खुल गया। उसमें प्रवेश कर वे पीतल की पाँच सीढ़ियाँ नीचे उतरे और काले-काले फूलों और जली मिट्टी के हरे-हरे घड़ों से भरे हुए एक बग़ीचे में आए। इसके बाद वृद्ध मनुष्य ने अपनी जेब से एक रूमाल निकाल कर ताराशिशु की आँखों से बाँध दिया और उसे अपने आगे-आगे ले चला। और जब ताराशिशु की आँखें खोली गईं तो उसे पता लगा कि वह क़ैद में है और उसकी कोठरी में सींग का एक चिराग़ जल रहा है।

और बूढ़े ने एक खपड़े पर कुछ मोटी-सी रोटी उसके सामने रख कर कहा, "खा"। और उसने मिट्टी के एक शकोरे में पानी रख दिया और कहा, "पी" और जब ताराशिशु खा-पी चुका तो बुड्ढा चला गया और बाहर से द्वार में ताला लगाता गया।

बुड्ढा उस नगर का सब से बड़ा जादूगर था और उसने अपनी कला का ज्ञान नील नदी के पास के क़स्बों में रहने वाले

एक करामाती से सीखा था। अगले रोज़ दिन निकलने पर उसने ताराशिशु के पास आकर कहा, "देख, पास ही के जंगल में सोने के तीन टुकड़े छिपे हुए है। एक सफ़ेद सोने का है, दूसरा पीले सोने का और तीसरा लाल सोने का। आज तू सफ़ेद सोने का टुकड़ा ढूंढ़ लाकर मुझे दे, और जो तू नहीं लाया तो, याद रख, तेरे सौ बेत मारूँगा। और अब तू जल्दी ही जा और शाम को मैं बाग़ के दरवाज़े पर तेरा इन्तज़ार करूँगा। याद रहेगा न? सफ़ेद सोना लाना होगा, सफ़ेद सोना, नहीं तो तेरे हक़ में अच्छा न होगा। तू मेरा ग़ुलाम है और मैंने एक प्याला शराब की क़ीमत में तुझे ख़रीदा है।" इतना कहकर उसने ताराशिशु की आँखों से रूमाल बाँध दिया और उसे वहाँ से निकाल कर काले फूलों के बाग़ में होता हुआ पीतल की पाँच सीढ़ी चढ़ा कर द्वार के बाहर ले गया और वहाँ उसने उसे गली में छोड़ दिया।

ताराशिशु नगर का फाटक पार करके उस जंगल में पहुँचा जिसमें जाने को जादूगर ने उससे कहा था।

बाहर से देखने से यह जंगल बड़ा मनोरम मालूम होता था। उसमें चिड़ियाँ मनहर गीत गाती हुई सुनाई देती थीं और ऐसा मालूम होता था कि उसमें बड़े मधुर फूल होंगे क्योंकि उनकी सुगन्ध बाहर तक आ रही थी। सो, ताराशिशु ने बड़ी खुशी-खुशी उस जंगल में प्रवेश किया। पर उसके प्रवेश करते ही जंगल की तमाम शोभा उसके लिए कटीली बन गई। क्योंकि जिधर-जिधर वह गया उधर-उधर ही चारों तरफ़ से लम्बे-लम्बे काँटे

भूमि में से फूट पड़े और उसके शरीर में चुभने लगे। लम्बी-लम्बी तेज़ किनारोंवाली घास से उसकी खाल कटने लगी और ताराशिशु को बड़ा भारी कष्ट हुआ। फिर भी सुबह से दोपहर हो गया उसे सोने का टुकड़ा ढूँढ़ते ढूँढ़ते, और दोपहर से शाम, पर सोने का टुकड़ा उसे कहीं न मिला। और तब वह रोता-रोता घर की तरफ़ लौटा और सौ बेतों से पिटने की कल्पना कर रोने लगा।

पर जंगल के सिरे पर पहुँच कर उसने एक झाड़ी में से किसी की कष्ट की सी आवाज़ आती हुई सुनी, और अपने कष्ट को भूल कर वह उधर देखने के लिए चला। वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि एक खरगोश जाल में फँसा पड़ा है जो किसी जालिए ने वहाँ बिछा रक्खा था।

ताराशिशु को उस पर दया आई और उसने उसे छुड़ाते हुए कहा, "मैं स्वयं भी गुलाम हूँ और आज़ादी के मूल्य को समझता हूँ। मुक्त हो जाओ।"

और खरगोश ने कृतज्ञता दिखाते हुए कहा, "तुमने मुझे आज़ादी दी है, सो बताओ तुम्हारे लिए मैं क्या करूँ? बदले में उपकार करना मेरा कर्तव्य है।"

तब ताराशिशु ने उत्तर दिया, "मैं सुबह से सफ़ेद सोने के टुकड़े को ढूँढ़ता फिर रहा हूँ पर उसे कहीं भी नहीं पा सका। और यदि मैं ख़ाली हाथ लौटूँगा तो मेरा स्वामी मुझे मारेगा।"

"आओ, मेरे साथ आओ," खरगोश बोला, "मैं तुम्हें

अभी वह स्थान दिखाए देता हूँ जहाँ वह सोने का टुकड़ा छिपा हुआ है।"

ताराशिशु ख़रगोश के साथ चल दिया और कुछ दूर जाकर एक शहतूत के पेड़ के खोखले में उसे वह सोने का टुकड़ा रक्खा दिखाई दिया। और ताराशिशु आनन्द से भर गया और आनन्द में भर कर उसने वह सोने का टुकड़ा उठा लिया और ख़रगोश से कहा, "मैंने जो भलाई तुम्हारे साथ की थी उससे सौ-गुनी तुमने मेरे साथ की है और मैंने जो दया तुम्हें दिखाई थी उससे सौ-गुनी दया तुमने मुझे दिखाई है।"

"नहीं नहीं," ख़रगोश ने कहा, "जैसा तुमने मेरे साथ किया ठीक वैसा ही मैंने तुम्हारे साथ किया है।" यह कह कर वह भाग गया और ताराशिशु नगर की तरफ़ चला।

परन्तु नगर-द्वार पर उसे एक कोढ़ी बैठा हुआ मिला। उसके सिर पर एक बारीक कपड़ा ढका हुआ था और उस कपड़े के दो सूराखों में से उसके नेत्र लाल अँगारे की तरह चमक रहे थे। जब उसने ताराशिशु को आते हुए देखा तो वह अपने लकड़ी के खपड़े को हिलाने लगा और उससे बोला, "मुझे एक पैसा दे दे बच्चा। मैं भूखा मर रहा हूँ। लोगों ने मुझे शहर से निकाल दिया है। मेरे ऊपर किसी को रहम नहीं है।"

"मैं लाचार हूँ भाई," ताराशिशु ने कहा, "मेरे पास केवल एक ही वस्तु है और उसे अगर मैं अपने मालिक के पास नहीं ले जाऊँगा तो वह मुझे पीटेगा क्योंकि मैं उसका गुलाम हूँ।"

पर कोढ़ी गिड़गिड़ाने और खुशामद करने लगा जिस पर ताराशिशु को तरस आ गया और उसने सोने का टुकड़ा निकाल कर उसे दे दिया।

और जब वह जादूगर के मकान पर पहुँचा तो जादूगर ने द्वार खोल दिया और उसे भीतर ले गया और वहाँ उसने उससे पूछा, "क्यों, ले आया सफ़ेद सोने का टुकड़ा तू?" और जब ताराशिशु ने कहा कि मेरे पास नहीं है तो जादूगर उस पर टूट पड़ा और उसे पीटने लगा। उसने उसके सामने एक ख़ाली खपड़ा रख कर कहा, "खा" और एक ख़ाली शकोरा रख कर कहा, "पी।" और बाद में उसे फिर अँधेरी कोठरी में ढकेल दिया।

अगले दिन फिर सुबह के समय जादूगर ने उसके पास आकर कहा, "अगर आज तूने मुझे पीले सोने का टुकड़ा लाकर नहीं दिया तो मैं ज़िन्दगी भर तुझे अपना ग़ुलाम रक्खूँगा और तेरे तीन सौ बेत मारूँगा।"

सो ताराशिशु फिर जँगल में पहुँचा और दिन भर पीले सोने का टुकड़ा ढूँढ़ता रहा, पर उसे कहीं न पा सका। और जब शाम को वह फिर बैठ कर रोने लगा तो वही ख़रगोश पुनः उसके पास आया और उससे बोला, "क्यों जी, तुम क्यों रो रहे हो और आज इस जंगल में क्या तलाश कर रहे हो?"

इस पर ताराशिशु ने उत्तर दिया, "आज मैं पीले सोने का टुकड़ा ढूँढ़ने आया हूँ और वह मुझे अभी तक कहीं भी नहीं

मिला है। और अगर मैं उसे अपने मालिक के पास नहीं ले जाऊँगा तो वह हमेशा के लिए मुझे गुलाम बनाए रक्खेगा।"

"अच्छा तो फिर मेरे पीछे-पीछे आओ," खरगोश ने कहा और वह ताराशिशु को एक पानी के गड्ढे के पास ले गया। ताराशिशु ने देखा कि सोने का टुकड़ा गड्ढे की तली में पड़ा चमक रहा है।

"मैं तुम्हें किस तरह धन्यवाद दूँ," उसने खरगोश से कहा, "यह दूसरी बार तुमने सहायता करके मेरी रक्षा की है।"

"नहीं, पहले तो तुमने ही मेरी सहायता की थी। इसलिए तुम्हारा ही अधिक उपकार है।" और खरगोश यह कह कर भाग गया।

और तारा-शिशु ने पीले सोने का टुकड़ा उठा कर अपनी जेब में रख लिया और वह शहर की ओर चला। परन्तु कोढ़ी ने उसे आते हुए देख लिया और दौड़ कर आकर गिड़गिड़ाने लगा, "मुझे कुछ देते जाओ, दाता, नहीं तो मैं भूख से मर मिटूँगा।"

इस पर तारा-शिशु ने उससे कहा, "मेरी जेब में केवल एक सोने का टुकड़ा है और अगर उसे ले जाकर मैं अपने मालिक को नहीं दूँगा तो वह मारेगा और मुझे हमेशा गुलाम बना कर रक्खेगा।"

परन्तु कोढ़ी बहुत गिड़गिड़ाया और उसने बहुत मिन्नतें कीं और तारा-शिशु का हृदय दया से पिघल गया। उसने कोढ़ी को पीले सोने का टुकड़ा दे दिया और जब वह जादूगर के मकान पर

पहुँचा तो जादूगर ने भीतर ले जाकर उससे पूछा, "बोल, पीले सोने का टुकड़ा लाया है ?" और तारा-शिशु ने उत्तर दिया, "नहीं" —। इस पर जादूगर ने उसे खूब पीटा, खूब पीटा, और फिर हथकड़ी-बेड़ियों में जकड़ कर उसे अँधेरी कोठरी में डाल दिया।

अगले रोज़ दिन निकलने पर जादूगर उसके पास फिर आया और बोला, "इधर देख, अगर आज तूने मुझे लाल सोने का टुकड़ा ला दिया तो मैं तुझे मुक्त कर दूँगा, पर जो तू नहीं लाया तो मैं निश्चय ही तुझे मार डालूँगा।"

बेचारा तारा-शिशु फिर जंगल की ओर चल दिया। और दिन भर लाल सोने के टुकड़े को उसने ढूँढ़ा पर कोई फल न हुआ। और शाम को जब वह निराश होकर बैठ कर रोने लगा तो वही खरगोश उसके पास फिर आया।

"अरे तुम रो क्यों रहे हो ? जिस लाल सोने की तलाश में तुम हो वह तो तुम्हारे पीछे ही उस खोह में रक्खा हुआ है।" खरगोश ने उससे कहा।

"मैं कैसे तुम्हारा बदला चुकाऊँ, मेरे मुसीबत के साथी," तारा-शिशु विह्वल होकर बोला, "यह देखो, यह तीसरी बार तुम मेरी रक्षा कर रहे हो।"

"अरे चुप, चुप। तुमने ही तो पहले मेरे साथ भलाई की थी," और यह कहते-न-कहते खरगोश वहाँ से नौ-दो-ग्यारह हो गया।

तब तारा-शिशु उस खोह में घुसा और उसके दूर के कोने में उसे लाल सोने का टुकड़ा रक्खा हुआ मिला। टुकड़े को जेब में

रख वह जल्दी से नगर की ओर रवाना हुआ। और ज्यों ही कोढ़ी ने उसे जाते हुए देखा वैसे ही वह आकर उसके सामने खड़ा हो गया और कहने लगा, "वह लाल सोने का टुकड़ा जो तुम्हारे पास है मुझे दे दो, नहीं तो मैं भूख से मर जाऊँगा," और तारा-शिशु को फिर पहले की भांति उस पर दया आ गई और उसने कोढ़ी को सोने का टुकड़ा दे दिया। परन्तु वह जानता था कि ऐसा करने से आज उसे किस दुर्भाग्य का सामना करना पड़ेगा और उसका हृदय धक्-धक् कर रहा था।

[६]

परन्तु वहाँ तो एक आश्चर्य घटित होगया। क्योंकि जैसे ही तारा-शिशु नगर द्वार में होकर निकलने लगा वैसे ही सब पहरेदारों ने सावधान होकर उसे झुक कर सलाम किया और वे आपस में कहने लगे, "देखो, देखो, हमारे स्वामी कितने सुन्दर हैं।" और एक झुंड का झुंड तारा-शिशु के पीछे लग गया और हाथ उठा-उठा कर आनन्द से चिल्लाने लगा, "निस्सन्देह संसार-भर में हमारे स्वामी के समान कोई भी सुन्दर नहीं है, संसार-भर में हमारे स्वामी के समान कोई भी सुन्दर नहीं है।" तारा-शिशु बेचारा तो यह देख कर रोने लगा और मन में सोचने लगा—"ये लोग मुझे क्यों चिढ़ा रहे हैं? इन्हें मेरे कष्ट में मजा आता है।" आदमियों की भीड़ यहाँ तक बढ़ी कि वह अपना रास्ता भी भूल गया और भटकता-भटकता एक बड़े से चौक में पहुँच गया जहाँ एक बादशाह का महल खड़ा था।

परन्तु तारा-शिशु के उधर पहुँचते ही महल के फाटक खुल पड़े और राज-पुरोहित तथा बड़े-बड़े कर्मचारी उसकी अगवानी के लिए दौड़े। वे उसके सामने अति विनीत होकर बोले, "पधारिए, पधारिए, आप ही के लिए हम इतने समय से प्रतीक्षा कर रहे थे। आप ही हमारे महाराज के पुत्र हैं।"

तारा-शिशु बेचारा घबड़ाया और बोला, "नहीं नहीं, मैं किसी महाराज या बादशाह का पुत्र नहीं हूँ। मैं तो एक ग़रीब भिखारिन का लड़का हूँ। और यह तुम क्यों कहते हो कि मैं सुन्दर हूँ? मैं स्वयं जानता हूँ कि मैं कितना कुरूप हूँ।"

तब एक सरदार, जिसके कवच पर फूल बन रहे थे और जिसके फ़ौजी टोप के ऊपर एक पंखदार केहरी बनाया हुआ था, आगे बढ़ा और तारा-शिशु के सामने अपनी चमकती हुई ढाल करके बोला, "मेरे स्वामी कैसे कहते हैं कि वह सुन्दर नहीं हैं?"

और तारा-शिशु ने ढाल में देखा और अपनी प्रतिच्छाया में उसे अपना मुख वैसा ही सुन्दर दिखाई दिया जैसा कि वह पहले था और उसके शरीर की तमाम पुरानी कमनीयता उसमें पूर्ववत् लौट आई थी। और उसे अपने नेत्रों में एक ऐसी विशेषता दिखाई दी जो उसने पहले नहीं देखी थी।

राज-पुरोहित और तमाम अधिकारियों ने घुटने टेक कर उसकी वन्दना की और उससे कहा, "पुराने दिनों में पंडितों ने भविष्य-वाणी की थी कि आज के दिन हमको वह मिलेगा जो हम पर शासन करेगा। वह भविष्यवाणी सत्य हुई है। सो, हे

हमारे प्रभु, अब आप इस राजमुकुट और राजदंड को स्वीकार कीजिए और अपने न्याय तथा दयाधर्म को धारण कर हमारे राजा बनिए।"

पर ताराशिशु ने उनसे कहा, "नहीं मैं इस सब के योग्य नहीं हूँ, क्योंकि मैंने अपनी उसी मा को अस्वीकार कर दिया जिसने मुझे पैदा किया था। और न मैं तब तक कहीं चैन से बैठ ही सकता हूँ जब तक कि वह मुझे मिल नहीं जाएगी और मुझे क्षमा नहीं कर देगी। यद्यपि तुम मुझे राजदंड और राजमुकुट भेंट कर रहे हो, पर मैं तो यहाँ ठहर ही नहीं सकता। मुझे तो तमाम दुनिया में घूम-घूम कर अपनी मा को ढूँढ़ना है। इसलिए मुझे अब जाने दो।" और उनसे इतना कह कर वह शहर से बाहर जाने के लिए गली की तरफ़ घूम पड़ा,—और उधर उसने क्या देखा! सिपाहियों के इर्द-गिर्द भीड़ में वही भीख माँगनेवाली स्त्री थी जो उसकी माता थी और उसके बराबर में वही कोढ़ी खड़ा था जो ताराशिशु को सड़क पर मिला करता था।

अपनी माता को देखते ही उसके मुख से एक तीव्र हर्षध्वनि निकली और वह दौड़ कर वहाँ पहुँचा जहाँ वह खड़ी थी। वहाँ उसने उकड़ूँ बैठ कर अपनी माता के पैरों के घावों को साफ़ किया और उन्हें अपनी आँखों के आँसुओं से धोया। वेदना से अपने सिर को धूलि में लुटाता हुआ सिसकियाँ भर कर वह अपनी मा से कहने लगा, "अपने घमंड के दिनों में मैंने तुम्हारा

तिरस्कार किया था। मेरी दीनता के दिनों में तुम मुझे स्वीकार करो, मा। मैंने तुम्हें घृणा दी थी, तुम मुझे प्यार दो, मा। मैंने तुझे दुत्कार दिया था। अब वही तेरा पुत्र मातृस्नेह की भीख माँग रहा है। मुझे स्वीकार कर, मा।"

परन्तु भीख माँगनेवाली औरत एक शब्द भी नहीं बोली।

तब ताराशिशु ने अपने दोनों हाथ फैला कर कोढ़ी के दोनों पैर पकड़ लिए और उससे कहा, "मैंने तीन बार तुम्हारे प्रति दया की है। तुम मेरी माता से कहो कि वह एक बार तो मुझसे बोले।"

परन्तु कोढ़ी ने भी उत्तर में एक शब्द तक न कहा।

बेचारा ताराशिशु बिलखने लगा और व्याकुल होकर कहने लगा, "मा, मेरी वेदना बढ़ रही है। मुझसे अब यह सहन नहीं होती। तुम मुझे एक बार क्षमा कर दो और मैं वापिस जंगल को चला जाऊँगा। तब भिखारिनी ने उसके सिर पर हाथ रक्खा और कहा, "उठ"। और कोढ़ी ने भी उसके सिर पर हाथ रक्खा और कहा, "उठ"।

और जब ताराशिशु ने खड़े होकर देखा तो उसके सामने एक राजा और एक रानी खड़े थे।

रानी बोली, "पुत्र, यह तेरे पिता हैं जिनकी तूने सहायता की थी।"

और राजा बोला, "पुत्र, यह तेरी माता हैं जिनके पैर के घावों को तूने अपने आँसुओं से धोया है।"

और राजा और रानी दोनों ने उसे गले से लगाया और उसका खूब चुम्बन किया। वे उसे राजमहल में ले आए, वहाँ उसे नए राजोचित वस्त्र पहनाए, उसके सिर पर राजमुकुट रक्खा और उसके हाथ में राजदंड दिया और ताराशिशु उस नगर का शासक बन गया। उसके राज्य में न्याय और दया का बोलबाला था। दुष्ट जादूगर को उसने नगर से निकाल दिया और लकड़हारे और उसकी पत्नी के पास उसने बढ़िया-बढ़िया उपहार भेजे तथा उसके लड़कों को अपने राज्य में बुला कर उसने अच्छे-अच्छे पद दिए। उसके राज्य में कोई पशु-पक्षी तक के साथ निर्दयता नहीं कर सकता था। उसने अपनी प्रजाओं को उदारता, दया तथा प्रेम का पाठ पढ़ाया। भूखों को वह रोटी देता तथा नंगों को कपड़े। उसके समय में देश भर में सुख और समृद्धि और शान्ति रही। ❀

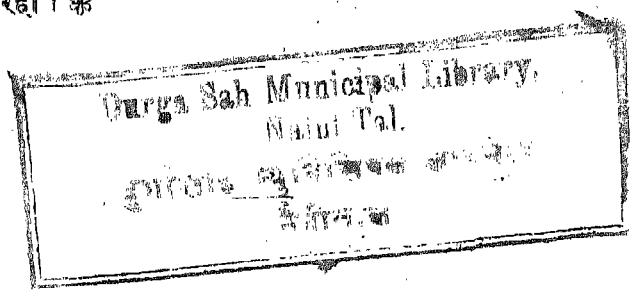
Durga Sah Municipal Library,
Naini Tal.

❀ ऑस्कर वाइल्ड की एक कहानी।